पहली गलत सूचना—'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने 'जैन साहित्य और इतिहास' के पृष्ठ १२२ का सन्दर्भ देते हुए लिखा है कि "पं० नाथूराम जी प्रेमी ने जिनसेनकृत हरिवंशपुराण और आचार्य हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश में ऐसे अनेक तथ्यों को खोज निकाला है, जिनके आधार पर ये ग्रन्थ स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति, अन्यलिंगमुक्ति का निषेध करनेवाली मूलसंघीय दिगम्बरपरम्परा से भिन्न किसी अन्य परम्परा के सिद्ध होते हैं।" (जै.ध.या.सं./पृ.६२)।

यह सूचना एकदम गलत है। मैंने प्रेमी जी कृत 'जैन साहित्य और इतिहास' के दोनों संस्करण अच्छी तरह देखे हैं, न तो उनके १२२ पृष्ठ पर उक्त तथ्यों का उल्लेख है, न अन्य किसी पृष्ठ पर। इसके विपरीत उन्होंने तो उक्त दोनों ग्रन्थों को दिगम्बरसम्प्रदाय का ही बतलाया है। वे लिखते हैं—"दिगम्बरसम्प्रदाय के संस्कृत-कथासाहित्य में हरिवंशचरित या हरिवंशपुराण समय की दृष्टि से तीसरा कथाग्रन्थ है—पहला रविषेणाचार्य का पद्मचरित, दूसरा जटासिंहनन्दी का वराङ्गचरित्र और तीसरा यह।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.११३)।

निम्नलिखित वक्तव्यों में प्रेमी जी ने हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश को दिगम्बरसम्प्रदाय का ग्रन्थ निरूपित किया है—

"काठियाबाड़ के ही वर्द्धमानपुर में, जो इस समय बढ़वाण के नाम से प्रसिद्ध है, आचार्य जिनसेन ने अपना हरिवंशपुराण श० सं० ७०५ और हरिषेण ने अपना कथाकोष श० सं० ८५३ में समाप्त किया था। अतएव काठियाबाड़ में दिगम्बरसम्प्रदाय काफी प्राचीनकाल से रहा है।" (जै.सा.इ./प्र.सं./पृ. ४४६)।

हरिषेण-कथाकोष का परिचय देते हुए वे अन्यत्र लिखते हैं—"उपलब्ध जैनकथाकोशों में यह कथाकोश सबसे प्राचीन है। इसका रचनाकाल शकसंवत् ८५३, वि० सं० ९८९ और श्लोक संख्या साढ़े बारह हजार है। दिगम्बरसम्प्रदाय में 'आराधनाकथाकोश' नाम के दो संस्कृतग्रन्थ और हैं, एक प्रभाचन्द्र का गद्यबद्ध और दूसरा मल्लिभूषण के शिष्य ब्र० नेमिदत्त का पद्यबद्ध।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.२२०)।

इस प्रकार पं० नाथूराम जी प्रेमी ने हरिवंशपुराणकार जिनसेन और बृहत्कथाकोशकार हरिषेण, इन दोनों पुन्नाटसंघीय आचार्यों को दिगम्बरसम्प्रदाय का ही माना है। तात्पर्य यह कि उनके अनुसार पुन्नाटसंघ दिगम्बरसम्प्रदाय का ही संघ था।

दूसरी गलत सूचना—डॉ० सागरमल जी ने आगे लिखा है—"यद्यपि हरिवंशपुराण के प्रथम और अन्तिम सर्ग में आचार्यों की जो सूची दी गई है, उसके कारण पुन्नाटसंघ को यापनीय मानने में बाधा आती है, किन्तु श्रीमती कुसुम पटोरिया और पं० नाथूराम

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जी प्रेमी ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि ये अंश यापनीयसाहित्य के दिगम्बरसाहित्य में अन्तर्भूत होने के बाद प्रक्षिप्त हुए हैं।'' (जै.ध.या.स./पृ.६२)।

यह सूचना भी सर्वथा गलत है। पं० नाथूराम जी प्रेमी ने ऐसी संभावना कहीं पर भी व्यक्त नहीं की। इसीलिए उक्त ग्रन्थ के लेखक ने प्रेमी जी के किसी ग्रन्थ का कोई सन्दर्भ भी पाद-टिप्पणी में नहीं दिया है। केवल श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया ने 'यापनीय और उनका साहित्य' ग्रन्थ (पृष्ठ १५१) में ऐसा मन्तव्य प्रकट किया है, किन्तु उन्होंने प्रेमी जी का नाम नहीं लिया।

इससे स्पष्ट है कि प्रेमी जी ने हरिवंशपुराण की उपर्युक्त (प्रकरण १/शी.६ में वर्णित) दिगम्बराचार्यों की सूची को प्रक्षिप्त नहीं माना है। पूर्व में उनके शब्द उद्धृत किये जा चुके हैं, जिनमें उन्होंने हरिवंशपुराण और बृहत्कथाकोश दोनों को दिगम्बरसम्प्रदाय का ग्रन्थ घोषित किया है। यदि वे उक्त आचार्यसूची को प्रक्षिप्त मानते, तो उसे दिगम्बरग्रन्थ कदापि न कहते।

हाँ, श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया ने उसे प्रक्षिप्त माना है। किन्तु उनका कथन तब युक्तिसंगत होता, जब हरिवंशपुराण में स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति, गृहस्थमुक्ति, अन्यलिंगिमुक्ति आदि यापनीय-मान्यताओं का निषेध न किया गया होता, अपितु इनका प्रतिपादन होता। ऐसा होने पर वह यापनीयग्रन्थ होता और तब यापनीयसिद्धान्तों से मेल न खाने के कारण दिगम्बराचार्यों की उक्त सूची निश्चित ही प्रक्षिप्त मानी जाती। किन्तु पूर्व में सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि हरिवंशपुराण में स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि सभी यापनीय-मान्यताओं का निषेध किया गया है, जिससे वह यापनीयमत का नहीं, अपितु दिगम्बरमत का ग्रन्थ है। अतः दिगम्बराचार्यों की सूची उसके अनुरूप होने के कारण प्रक्षिप्त नहीं है, अपितु ग्रन्थकार द्वारा ही निबद्ध की गयी है।

२

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराण[२३] के कथनानुसार राजा सिद्धार्थ के भगिनीपति राजा जितशत्रु कुमार महावीर के साथ अपनी कन्या यशोदा का विवाह करना चाहते थे। इससे भी हरिवंश-पुराणकार का यापनीय होना सिद्ध होता है। (या.औ.उ.सा./१४९)।

दिगम्बरपक्ष

हरिवंशपुराणकार ने राजा जितशत्रु के मन की इच्छा सूचित कर अपनी ओर से कहा है कि ''परन्तु कुमार महावीर तप के लिए चले गये और केवलज्ञान प्राप्त

---

२३. यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीरविवाहमङ्गलम्।
अनेक-कन्या-परिवारयारुहत्समीक्षितुं तुङ्ग-मनोरथं तदा॥ ६६/८॥ हरिवंशपुराण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कर जगत् के कल्याण के लिए पृथ्वी पर विहार करने लगे।''[२४] इस कथन से स्पष्ट है कि हरिवंशपुराण के कर्त्ता जिनसेन भगवान् महावीर के विवाह की मान्यता के विरोधी हैं।

यह जिनसेन के दिगम्बर होने का प्रमाण है। तथा भगवान् महावीर के माता-पिता के मन में उनके विवाह की इच्छा उत्पन्न होने का उल्लेख अपभ्रंशभाषा के दिगम्बर कवि **रइधू** के **महावीरचरिउ** में भी मिलता है। पं० हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री सकलकीर्ति-विरचित **वीरवर्धमानचरित** की प्रस्तावना में लिखते हैं—''दिगम्बरपरम्परा के अनुसार भगवान् महावीर अविवाहित ही रहे हैं, फिर भी रइधू कवि ने अपने 'महावीरचरिउ' में माता-पिता के द्वारा विवाह का प्रस्ताव भगवान् महावीर के सम्मुख उपस्थित कराया है और भगवान् के द्वारा बहुत उत्तम ढँग से उसे अस्वीकार कराया है, जो कि बिलकुल स्वाभाविक है। अपने पुत्र को सर्व प्रकार से सुयोग्य और वयस्क देखकर प्रत्येक माता-पिता को उसके विवाह की चिन्ता होती है।'' (प्रस्ता./पृ.१०)।

इस प्रकार दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थों में भी भगवान् महावीर के माता-पिता आदि के मन में उनके विवाह की इच्छा उत्पन्न होने का उल्लेख उपलब्ध होता है। अतः यह यापनीयग्रन्थ का असाधारणधर्म या लक्षण नहीं है। फलस्वरूप यह हरिवंशपुराण को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का हेतु न होने से हेत्वाभास है।

३

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराण में सग्रन्थमुक्ति और अन्यलिंगिमुक्ति के भी निर्देश प्राप्त होते हैं। यथा—

न द्रव्याद्, द्रव्यतः सिद्धिः पुल्लिङ्गेनैव निश्चिता।
निर्ग्रन्थेन च लिङ्गेन सग्रन्थेनाथवा न वा॥ ६४ / ९४॥

डॉ० सागरमल जी ने इसका अर्थ यह किया है कि लिंग की अपेक्षा निर्ग्रन्थलिंग (अचेललिंग) अथवा सग्रन्थलिंग (सचेललिंग) से मुक्ति होती है।

पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने इस श्लोक का अर्थ बतलाते हुए लिखा है कि प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा निर्ग्रन्थलिंग से ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राही (भूतकाल के विषय को ग्रहण करने वाले) नय की अपेक्षा सग्रन्थलिंग से होती भी है और नहीं भी।

---

२४. स्थितेऽथ नाथे तपसि स्वयम्भुवि प्रजातकैवल्यविशाललोचने।
जगद्विभूत्यै विहरत्यपि क्षितिं क्षितिं विहाय स्थितवांस्तपस्ययम्॥ ६६ / ९॥ हरिवंशपुराण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

डॉ० सागरमल जी ने इस व्याख्या को अनुचित बतलाया है और शंका व्यक्त की है कि मूलपाठ के साथ भी **'न वा'** (अथवा नहीं) जोड़कर छेड़छाड़ की गई है। तथा भूतार्थग्राहिनय और भूतार्थनय को एक मानते हुए पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य की बौद्धिकता पर भी प्रश्नचिह्न लगाया है, कहा है कि "भूतार्थनय का अर्थ भूतकालिक-पर्याय नहीं है, अपितु यथार्थदृष्टि या निश्चयदृष्टि है। कुन्दकुन्द ने भूतार्थ का अर्थ निश्चयदृष्टि या सत्यदृष्टि किया है।" (जै.ध.या.स./पृ.१७५)। और डॉ० सागरमल जी ने अन्त में उपर्युक्त श्लोक से यही अर्थ निकाला है कि हरिवंशपुराण में सचेललिंग से भी मुक्ति स्वीकार की गई है।

दिगम्बरपक्ष

पूर्व में हरिवंशपुराण में स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और अन्यलिंगिमुक्ति के निषेध के इतने अधिक प्रमाण दिये गये हैं कि 'हरिवंशपुराण सग्रन्थमुक्ति का कट्टर विरोधी है,' इस बात में सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती। इसलिए इस तथ्य में भी शंका के लिए स्थान नहीं है कि पण्डित पन्नालाल जी साहित्याचार्य द्वारा की गई उपर्युक्त व्याख्या सर्वथा सही है और मूलग्रन्थ में भी रत्ती भर छेड़छाड़ नहीं की गई है। हरिवंशपुराणकार ने तो सर्वत्र सर्वार्थसिद्धिटीका का अनुसरण किया है। देखिए—

१. "**प्रत्युत्पन्नग्राहिनयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे स्वप्रदेशे आकाशप्रदेशे वा सिद्धिर्भवति। भूतग्राहिनयापेक्षया जन्म प्रति पञ्चदशसु कर्मभूमिषु, संहरणं प्रति मानुषक्षेत्रे सिद्धिः।**" (स.सि./१०/९/९३७/पृ. ३७३)।

अनुवाद—"प्रत्युत्पन्ननय (वर्तमान अर्थ को ग्रहण करनेवाले नय) की अपेक्षा सिद्धिक्षेत्र में, स्वप्रदेश में या आकाशप्रदेश में सिद्धि होती है। भूतग्राहिनय (भूतकालीन अर्थ को ग्रहण करनेवाले नय) की दृष्टि से जन्म की अपेक्षा पन्द्रह कर्मभूमियों में और संहरण की अपेक्षा मानुषक्षेत्र में सिद्धि होती है।"

इन्हीं नयों से इसी अर्थ का प्रतिपादन **हरिवंशपुराणकार** ने निम्नलिखित श्लोकों में किया है—

सिद्धिक्षेत्रे मता सिद्धिरात्माकाशप्रदेशयोः।
प्रत्युत्पन्न - प्रतिग्राहिनय - योगादसङ्ख्यिनाम्॥ ६४/८८॥

कर्मभूमिषु सर्वासु जन्म प्रति च संहृतिम्।
संसिद्धिर्मानुषे क्षेत्रे भूतग्राहिनयेक्षया॥ ६४/८९॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२. "**प्रत्युत्पन्ननयापेक्षया एकसमये सिद्धयन् सिद्धो भवति। भूतप्रज्ञापननयापेक्षया जन्मतोऽविशेषेणोत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्जातः सिध्यति। विशेषेणावसर्पिण्यां सुषमदुःषमाया अन्त्ये भागे दुःषमसुषमायां च जातः सिध्यति।**" (स.सि./१०/९/९३७/पृ.३७३)।

अनुवाद—"प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा एक समय में सिद्ध होता हुआ सिद्ध होता है। भूतप्रज्ञापननय (भूतग्राहिनय) की दृष्टि से जन्म की अपेक्षा सामान्यतः उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में उत्पन्न हुआ सिद्ध होता है। विशेषरूप से अवसर्पिणी में सुषमा-दुःषमा के अन्तभाग में और दुःषमा-सुषमा में उत्पन्न हुआ सिद्ध होता है।"

इन्हीं नयों से इसी विषय का प्ररूपण **हरिवंशपुराण** के कर्त्ता ने नीचे दिये श्लोकों में भी किया है—

एकस्मिन्समये कालात्प्रत्युत्पन्ननयेक्षया।
भूतग्राहिनयेक्षातो जन्मतोऽप्यविशेषतः॥ ६४/९०॥

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्जातः सिद्धयति जन्मवान्।
विशेषेणावसर्पिण्यां तृतीयान्ततुरीययोः॥ ६४/९१॥

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रत्युत्पन्ननय और भूतग्राही नय की अपेक्षा जैसा कथन सर्वार्थसिद्धिकार ने किया है, वैसा ही उन नयों की अपेक्षा हरिवंशपुराणकार ने भी किया है। तथा—

३. "**लिङ्गेन केन सिद्धि :? अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो, न द्रव्यतः। द्रव्यतः पुल्लिङ्गेनैव अथवा निर्ग्रन्थलिङ्गेन। सग्रन्थलिङ्गेन वा सिद्धिर्भूत-पूर्वनयापेक्षया।**" (स.सि./१०/९/पृ.३७४)।

अनुवाद—"लिंग की अपेक्षा किस लिंग से सिद्धि होती है? लिंग की अपेक्षा अवेद से सिद्धि होती है अथवा भावलिंग की अपेक्षा तीनों वेदों से होती है, द्रव्यलिंग की अपेक्षा तीनों वेदों से नहीं होती। द्रव्यलिंग की अपेक्षा पुंल्लिङ्ग से ही सिद्धि होती है अथवा निर्ग्रन्थलिंग से सिद्धि होती है। अथवा भूतपूर्वनय की अपेक्षा सग्रन्थलिंग से होती है।"

सर्वार्थसिद्धिकार की इस टीका का अनुसरण **हरिवंशपुराणकार** ने निम्नलिखित श्लोकों में किया है—

सिद्धिः सिद्धिगतौ ज्ञेया सुमनुष्यगतौ यथा।
अवेदत्वेन लिङ्गेन भावतस्तु त्रिवेदतः॥ ६४/९३॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

न द्रव्याद्, द्रव्यतः सिद्धिः पुल्लिङ्गेनैव निश्चिता।
निर्ग्रन्थेन च लिङ्गेन सग्रन्थेनाथवा न वा॥ ६४ / ९४॥

सर्वार्थसिद्धिकार ने उपर्युक्त व्याख्या में स्पष्ट कर दिया है कि सग्रन्थलिंग से भूतपूर्वनय की अपेक्षा (निर्ग्रन्थलिंग से पूर्ववर्ती लिंग को ग्रहण करनेवाले नय की अपेक्षा) सिद्धि होती है, प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा (सिद्धि के साक्षात् साधक लिंग को ग्रहण करनेवाले नय की अपेक्षा) नहीं होती। इस प्रकार सग्रन्थलिंग से मुक्ति होती भी है और नहीं भी।

यही बात हरिवंशपुराणकार ने '**सग्रन्थेनाथवा न वा**' इन शब्दों में कही है अर्थात् सग्रन्थलिंग से भूतपूर्वनय की अपेक्षा सिद्धि होती है प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा नहीं होती।

यहाँ हरिवंशपुराणकार ने प्रत्युत्पन्ननय एवं भूतपूर्वनय शब्दों का प्रयोग नहीं किया, तथापि प्रस्तुत प्रकरण में सर्वार्थसिद्धि के समान हरिवंशपुराण में भी उक्त दोनों नयों से प्रतिपादन चल रहा है। 'सिद्धि होती भी है, और नहीं भी' इन परस्परविरोधी कथनों की संगति इन दोनों नयों से विचार करने पर ही बैठती है। इसलिए यहाँ ये दोनों नय अध्याहरणीय हैं, जैसे कि **हरिवंशपुराण** के निम्नलिखित श्लोकों में अध्याहरणीय हैं—

सिद्धिरव्यपदेशेन नयादेकेन वा पुनः।
चतुर्भिः पञ्चभिर्वापि चारित्रैरुपजायते॥ ६४ / ९६॥

अनुवाद—"चारित्रानुयोग की दृष्टि से विचार करने पर प्रत्युत्पन्नग्राहिनय की अपेक्षा एक यथाख्यातचारित्र से ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राहिनय की अपेक्षा चार अथवा पाँच चारित्रों से होती है।"

सिद्धिर्ज्ञानविशेषैः स्यादेकद्वित्रिचतुष्ककैः॥ ६४ / ९८॥

अनुवाद—"ज्ञानानुयोग से विचार करने पर प्रत्युत्पन्नग्राहिनय की अपेक्षा एक केवलज्ञान से ही सिद्धि होती है और भूतार्थग्राहिनय की अपेक्षा दो (मति, श्रुत), तीन (मति, श्रुत, अवधि) और चार (मति, श्रुत अवधि, मनःपर्यय) ज्ञानों से सिद्धि होती है।"

जैसे यहाँ भूतार्थग्राहिनय (मोक्ष के साक्षात् साधक चारित्र और ज्ञान से पूर्ववर्ती चारित्र और ज्ञान को ग्रहण करनेवाले नय) की अपेक्षा सामायिक, छेदोपस्थापना आदि चारित्रों से तथा मति, श्रुत आदि क्षायोपशमिक ज्ञानों से सिद्धि बतलायी गयी है और अर्थशक्ति के द्वारा अनुक्तरूप से प्रत्युत्पन्न-ग्राहिनय (मोक्ष के साक्षात् साधक चारित्र और ज्ञान को ग्रहण करनेवाले नय) की अपेक्षा उक्त चारित्रों और ज्ञानों से सिद्धि

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का अभाव द्योतित किया गया है, वैसे ही हरिवंशपुराण के पूर्वोक्त श्लोक (६४/९४) में भूतार्थग्राहिनय (मोक्ष के साक्षात् साधक निर्ग्रन्थलिंग से पूर्ववर्ती लिंग को ग्रहण करनेवाले नय) की अपेक्षा सग्रन्थलिंग से सिद्धि का कथन किया गया है और प्रत्युत्पन्नग्राहिनय (मोक्ष के साक्षात् साधक लिंग को ग्रहण करनेवाले नय) की अपेक्षा सग्रन्थलिंग से सिद्धि का निषेध किया गया है। इस प्रकार सग्रन्थलिंग से सिद्धि होने अथवा न होने के अनेकान्त का प्रतिपादन हरिवंशपुराणकार ने ही सर्वार्थसिद्धि के आधार पर किया है, किसी अन्य के द्वारा छेड़छाड़ करके आरोपित नहीं किया गया।

डॉ० सागरमल जी का कथन है कि "प्रस्तुत प्रसंग में (अर्थात् "**निर्ग्रन्थेन च लिङ्गेन सग्रन्थेनाथवा न वा**"—ह.पु./६४/९४, इस प्रसंग में) भी पं० पन्नालाल जी ने प्रत्युत्पन्ननय और भूतार्थनय के आधार पर व्याख्या करने का प्रयत्न किया है, किन्तु जिस प्रकार इसके पूर्व के पद्यों में इन नयों का स्पष्ट शब्दों में अध्याहार किया गया है, वैसा इस पद्य में नहीं है। यदि लेखक को इन नयों के आधार पर विवेचन करना होता, तो वह स्वयं उसका मूल पद्य में उल्लेख करता।" (जै.ध.या.स./पृ. १७५)।

डॉक्टर सा० का यह कथन युक्तिसंगत नहीं है। किसी पद्य या सूत्र में शब्द-विशेष का उल्लेख न किये जाने पर भी तात्पर्योपपत्ति के लिए उसे उसी प्रकरण या अधिकार के पूर्वपद्य या सूत्र से ग्रहण कर लेना अध्याहार कहलाता है। इस नियम के अनुसार "**निर्ग्रन्थेन च लिङ्गेन सग्रन्थेनाथवा न वा**" इस पद्यभाग में प्रत्युत्पन्न और भूतग्राही नय पूर्व पद्यों से अध्याहरणीय हैं, क्योंकि उनके अध्याहार के बिना तात्पर्य की उपपत्ति नहीं होती। इसका कारण यह है कि इसी पद्यभाग के पूर्वार्ध में यह कहा जा चुका है कि द्रव्यवेद या द्रव्यलिंग की अपेक्षा पुंल्लिंग से ही सिद्धि (मुक्ति) होती है, स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग से नहीं–"**न द्रव्याद् द्रव्यतः सिद्धिः पुल्लिङ्गेनैव निश्चिता।**" इससे स्त्रीमुक्ति का स्पष्ट शब्दों में निषेध हो जाता है। तथा "**लोचास्नानैकभक्तं च स्थितिभुक्तिरचेलता**" (ह.पु.२/१२८) इस पद्यभाग में अचेलत्व को मुनि का मूलगुण बतलाया गया है। इसके अतिरिक्त "**नवस्थानेषु निर्ग्रन्थाः रूपभेदविवर्जिताः**" (ह.पु./३/८४) इस उक्ति में छठे से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के निर्ग्रन्थों में वेशभेद का अभाव प्ररूपित किया गया है अर्थात् सभी मुनि समान-रूप से निर्ग्रन्थवेशधारी कहे गये हैं। इन वचनों से सग्रन्थमुक्ति का निषेध हो जाता है। अतः 'सग्रन्थलिंग से मुक्ति होती भी है और नहीं भी' इस कथन के औचित्य की सिद्धि या तात्पर्य की उपपत्ति प्रत्युत्पन्न और भूतग्राही नयों के अध्याहार से ही संभव है, अन्यथा नहीं। अतः पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने जो व्याख्या की है, वह सर्वार्थसिद्धिकार और उनके अनुगामी हरिवंशपुराणकार के अभिप्राय के अनुरूप ही की है। अतः पण्डित जी आक्षेप के पात्र नहीं हैं।

तथा भूतपूर्वनय, भूतग्राहीनय, भूतप्रज्ञाप्तनय और भूतार्थग्राहीनय, ये सब पर्यायवाची हैं, यह सर्वार्थसिद्धि के उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है। **भूतार्थग्राहिनय** और **भूतार्थनय** में जमीन-आसमान का अंतर है। भूतार्थनय का अर्थ कुन्दकुन्द के अनुसार निश्चयनय ही है, किन्तु भूतार्थग्राहीनय का अर्थ निश्चयनय नहीं है, अपितु 'भूतकालीन अर्थ (विषय या पर्याय) को ग्रहण करनेवाला' ही है, जैसा कि सर्वार्थसिद्धि के उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है। पंडित पन्नालाल जी ने अनुवाद में 'भूतार्थग्राहिनय' शब्द का ही प्रयोग किया है, 'भूतार्थनय' शब्द का नहीं। अतः 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक को अपनी ही भूल सुधारने की आवश्यकता है।

हरिवंशपुराण से स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति और केवलि-भुक्ति का निषेध करनेवाले जो बहुसंख्यक प्रमाण पूर्व में उद्धृत किये गये हैं, उनमें से प्रत्येक के द्वारा सग्रन्थमुक्ति का निषेध होता है। अतः ग्रन्थ में न केवल सग्रन्थमुक्ति के प्रतिपादन का अभाव है, अपितु उसका बहुशः निषेध किया गया है। इससे स्पष्ट है कि यापनीयपक्षधर पूर्वोक्त विद्वान् और विदुषी ने हरिवंशपुराण को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए जिस हेतु का प्रयोग किया है, वह असत्य है।

४

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराणकार ने ग्रन्थ के आरंभ में समन्तभद्र, देवनन्दी आदि दिगम्बर आचार्यों के साथ सिद्धसेन आदि श्वेताम्बर तथा इन्द्र (नन्दी), वज्रसूरि, रविषेण, वराङ्ग आदि यापनीय आचार्यों का आदरपूर्वक उल्लेख किया है। इससे यही सिद्ध होता है कि हरिवंशपुराण के कर्त्ता जिनसेन उदार यापनीयपरम्परा से सम्बद्ध रहे होंगे। (जै.ध.या.स./पृ. १७४)।

दिगम्बरपक्ष

इनमें से न तो सिद्धसेन श्वेताम्बर थे, न ही वराङ्गचरित के कर्त्ता जटासिंहनन्दी तथा इन्द्र, वज्रसूरि, रविषेण आदि यापनीय थे। ये सभी दिगम्बर थे। यह इसी ग्रन्थ में सिद्ध किया गया है। अतः हरिवंशपुराणकार को यापनीय सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त किया गया उपर्युक्त हेतु असत्य है।

५

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराण में आर्यिकाओं का स्पष्टरूप से उल्लेख मिलता है। आर्यिकासंघ की व्यवस्था यापनीय है। जो परम्परा स्त्री में महाव्रत के आरोपण को ही असंभव

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मानती हो, उसमें आर्यिकासंघ की व्यवस्था सम्भव ही नहीं है। (जै.ध.या.स./पृ.१७६)।

दिगम्बरपक्ष

निश्चयमहाव्रतों के आरोपण को असंभव मानते हुए भी दिगम्बरपरम्परा में आर्यिकासंघ की व्यवस्था है। आचार्य कुन्दकुन्द ने आर्यिका के लिंग का वर्णन **सुत्तपाहुड** की इस गाथा में किया है—

लिंगं इच्छीणं हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि।
अज्जिय वि एक्कवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ॥ २२॥

अनुवाद—"तीसरा लिंग स्त्रियों का है। इस लिंग को धारण करनेवाली स्त्री दिन में एक ही बार आहार ग्रहण करती है। वह आर्यिका कहलाती है और एक वस्त्रधारण करती है तथा वस्त्रधारण किये हुए ही भोजन करती है।"

दिगम्बरग्रन्थ **मूलाचार** में आर्यिकासंघ की आचारसंहिता का विस्तार से वर्णन किया गया है। हरिवंशपुराण दिगम्बरग्रन्थ है, इसलिए उसमें आर्यिका को दिगम्बर-परम्परानुसार ही **एकाम्बरसंवीता** (एकवस्त्रधारण करनेवाली) कहा गया है।[२५] श्वेताम्बर-परम्परा में तो भिक्खुणी अनेकाम्बरसंवीता होती है, जिसका अनुकरण यापनीयपरम्परा में हुआ था।

इस प्रकार दिगम्बरपरम्परा में आर्यिकापरम्परा का सद्भाव है, अतः हरिवंशपुराणकार को यापनीय सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त किया गया उक्त हेतु असत्य है।

६

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराण में श्वेताम्बरपरम्परा में उपलब्ध अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत के भेदों का उल्लेख है। श्वेताम्बरों के अतिरिक्त यापनीय ही इन ग्रन्थों को प्रमाण मानते थे। अतः हरिवंशपुराणकार यापनीय सिद्ध होते हैं। (जै.ध.या.स./पृ.१७३-१७४)।

दिगम्बरपक्ष

श्रुत के ये भेद दिगम्बरपरम्परा में भी प्रमाण माने गये हैं, केवल अंगबाह्य श्रुत के जो भेद हैं, उनके नामों में कुछ भिन्नता है। इसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका

---

२५. सुता चेटकराजस्य कुमारी चन्दना तदा।
धौतैकाम्बरसंवीता जातार्याणां पुरःसरी॥ २/७०॥ हरिवंशपुराण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है। हरिवंशपुराण में उनके नामों का उल्लेख श्वेताम्बरसाहित्य के अनुसार न होकर दिगम्बरपरम्परा के तत्त्वार्थराजवार्तिक, धवलाटीका आदि के अनुसार हुआ है। इससे सिद्ध है कि हरिवंशपुराण दिगम्बरपरम्परा का ही ग्रन्थ है। अतः हरिवंशपुराण के कर्त्ता को यापनीय सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया यह हेतु भी असत्य है।

७

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराण के ६०वें सर्ग में कृष्ण की आठों पटरानियों-सहित अनेक स्त्रियों के दीक्षित होने का उल्लेख है, जो उसके यापनीय-ग्रन्थ होने की संभावना को पुष्ट करता है। (जै.ध.या.स./पृ. १७६)।

दिगम्बरपक्ष

दिगम्बरसम्प्रदाय में भगवान् ऋषभदेव के समय से ही स्त्रियों के आर्यिकादीक्षा ग्रहण करने की परम्परा चली आ रही है। उनके समवसरण में तीन लाख पचास हजार आर्यिकाएँ थीं। शेष २३ तीर्थंकरों के समवसरणों में भी हजारों-लाखों आर्यिकाएँ थीं। (ह.पु./६०/४३२-४४०)। आचार्य कुन्दकुन्द ने आर्यिकाओं के एकवस्त्रात्मक लिंग का वर्णन किया है। अतः हरिवंशपुराण में कृष्ण की पटरानियों के दीक्षित होने का उल्लेख उसके दिगम्बरग्रन्थ होने की ही पुष्टि करता है। तथा आठों पटरानियों (**महादेवीभिरिष्टाभिरष्टभिः**/हरि.पु./४४/५०) में से किसी की भी स्त्रीपर्याय से मुक्ति नहीं बतलायी गयी। उनके बारे में भविष्यवाणी की गई हैं कि वे इस जन्म में दीक्षा लेकर तप करेंगी, अगले भव में देव होंगी, तत्पश्चात् मनुष्यभव में पुरुष होकर मोक्ष प्राप्त करेंगी। उदाहरणार्थ, हरिवंशपुराण के निम्नलिखित श्लोकों में कृष्ण की तीसरी पटरानी जाम्बवती के बारे में भगवान् नेमिनाथ कहते हैं कि "तुम इस जन्म में तपस्विनी होकर तप करोगी। पश्चात् स्वर्ग में उत्तम देव होकर वहाँ से च्युत हो राजपुत्र होगी। तदनन्तर तप के द्वारा तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा"—

नगरे जाम्बवाभिख्ये जाम्बवस्य खगेशिनः।
जाम्बवत्यां प्रियायां त्वं जाता जाम्बवती सुता॥ ६०/५३॥

तपस्तपस्विनी कृत्वा भूत्वा कल्पामरोत्तमः।
च्युत्वा नृपात्मजो भूत्वा तपसा सिद्धिमेष्यति॥ ६०/५४॥

हरिवंशपुराण में यह स्त्रीपर्याय से मुक्ति के निषेध का वर्णन ग्रन्थ को यापनीयमत के प्रतिपक्षी दिगम्बरसम्प्रदाय से सम्बद्ध सिद्ध करता है। इस प्रकार कृष्ण की आठों पटरानियों और अन्य स्त्रियों की दीक्षा का वर्णन केवल दिगम्बरपरम्परा के अनुकूल है, यापनीयपरम्परा के सर्वथा विरुद्ध है। अतः यहाँ प्रयुक्त किया गया हेतु भी असत्य है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

८

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराण के उल्लेखानुसार नन्दिषेण मुनि रुग्णमुनि का वेश धारण करके आये हुए देवों को उनका मनोवांछित भोजन लाकर देते हैं। यह आचरण दिगम्बर मुनि के अनुकूल न होकर श्वेताम्बर मुनि के अनुकूल है। अतः श्वेताम्बरपरम्परा को मानना हरिवंशपुराणकार के यापनीय होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। (या.औ.उ.सा./पृ.१५०)।

दिगम्बरपक्ष

हरिवंशपुराण में स्त्रीमुक्तिनिषेध, सवस्त्रमुक्तिनिषेध, गृहस्थमुक्तिनिषेध, परतीर्थिक-मुक्ति-निषेध और केवलिभुक्तिनिषेध जैसे यापनीयमत-विरोधी प्रबल प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे सिद्ध है कि वह यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है। उसमें एक मुनि के द्वारा रुग्णमुनि के लिए आहार लाकर देने का वर्णन है। इससे सिद्ध है कि किसी मुनि के द्वारा रुग्ण मुनि के लिए आहार लाकर देने का आचरण श्वेताम्बर या यापनीय मत का असाधारण धर्म नहीं है। अतः किसी ग्रन्थ में उसका वर्णन ग्रन्थ के यापनीय होने का हेतु नहीं हो सकता। फलस्वरूप हरिवंशपुराण को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया उपर्युक्त हेतु हेत्वाभास है। दिगम्बरग्रन्थ भगवती-आराधना में भी क्षपक के लिए चार मुनियों के द्वारा आहार-व्यवस्था कराये जाने का नियम उपदिष्ट किया गया है, जो परिस्थितिविशेष में दिगम्बरसिद्धान्त के प्रतिकूल नहीं है। इसका विवेचन **भगवती-आराधना** नामक त्रयोदश अध्याय में किया जा चुका है। तथा नन्दिषेण मुनि ऋद्धिधारी थे, अतः उनके लिए पात्र-ग्रहण किये बिना इच्छित व्यंजन, रुग्ण मुनि के हाथों में उपस्थित कर देना असंभव भी नहीं था।[२६]

९

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराण (४२/१२-१३, २२) में नारद को दो स्थानों पर चरमशरीरी कहा गया है, जब कि तिलोयपण्णत्ती और त्रिलोकसार नारद को नरकगामी मानते हैं। नारद को चरमशरीरी अथवा स्वर्गगामी मानना श्वेताम्बर-आगमिक-परम्परा है। चूँकि यापनीय श्वेताम्बर-आगमों को स्वीकार करते थे, अतः हरिवंशपुराण यापनीयग्रन्थ सिद्ध होता है। (या.औ.उ.सा./पृ.१५०)।

---

२६. ननन्द नन्दिषेणाख्यस्तपसोत्पन्नलब्धिभिः।
एकादशाङ्गभृत्साधुः सोढाशेषपरीषहः॥ १८/१३५॥ हरिवंशपुराण।
महालब्धिमतस्तस्य वैयावृत्योपयोगि यत्।
वस्तु तच्चिन्तितं हस्ते भेषजाद्याशु जायते॥ १८/१३८॥ हरिवंशपुराण।

दिगम्बरपक्ष

हरिवंशपुराण में स्त्रीमुक्तिनिषेध आदि यापनीयमत-विरोधी प्रबल प्रमाणों की उपलब्धि से सिद्ध है कि वह यापनीयग्रन्थ नहीं, बल्कि दिगम्बरग्रन्थ है। एकमात्र नारद के चरमशरीरी होने का कथन उसे यापनीयग्रन्थ सिद्ध नहीं कर सकता, क्योंकि सवस्त्र-मुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि के निषेध उसके यापनीयग्रन्थ होने का निषेध करते हैं। अतः नारद के चरमशरीरी होने का कथन यापनीयग्रन्थ का असाधारण धर्म नहीं है। इसलिए उसमें हरिवंशपुराण को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का हेतुत्व नहीं है, अत एव वह हेत्वाभास है।

यह सत्य है कि अन्य दिगम्बरपुराणों में नारद को नरकगामी माना गया है। किन्तु दिगम्बराचार्यों में भी कई जगह मतभेद देखे जाते हैं। जैसे किसी दिगम्बरपुराण में दुर्योधन को मोक्षगामी माना गया है, किसी में नरकगामी। इसी प्रकार हरिवंश-पुराण में यदि नारद को मोक्षगामी कहा गया है, तो इससे ग्रन्थ का दिगम्बरत्व बाधित नहीं होता, क्योंकि उसमें स्त्रीमुक्तिनिषेध आदि दिगम्बरत्व के साधक मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन है।

१०

यापनीयपक्ष

हरिवंशपुराण के अनुसार "ब्रह्मस्वर्ग से बलदेव का जीव श्रीकृष्ण के जीव को नरक से लेने जाता है। उस समय श्रीकृष्ण का जीव भरतक्षेत्र में बलदेव और श्रीकृष्ण की मूर्तिपूजा का प्रचार करने के लिए कहता है। और बलदेव का जीव वही करता है। श्रीकृष्ण और बलदेव दोनों सम्यग्दृष्टि जीव थे, उनके द्वारा मिथ्यात्व का प्रचार विचारणीय है।"[२७] (या.औ.उ.सा./१५०)।

दिगम्बरपक्ष

ऐसा लगता है कि 'यापनीय और उनका साहित्य' ग्रन्थ की लेखिका की दृष्टि से इस प्रकार के मिथ्यात्व का प्रचार यापनीयमत का विशिष्ट सिद्धान्त है, इसीलिए उन्होंने इस हेतु के द्वारा हरिवंशपुराण को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किन्तु यापनीयमत का यह विशिष्ट सिद्धान्त उन्हें किस यापनीयग्रन्थ में देखने को मिला, इस पर उन्होंने प्रकाश नहीं डाला।

भले ही ग्रन्थलेखिका के अनुसार उक्त मिथ्यात्व के प्रचार की प्रेरणा यापनीयमत के अनुकूल हो, तथापि उसके उल्लेख से हरिवंशपुराण यापनीयग्रन्थ सिद्ध नहीं होता,

---

२७. देखिए , पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य की हरिवंशपुराण-प्रस्तावना / पृ. १७-१८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

क्योंकि उसमें यापनीयों की वैकल्पिक सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि समस्त मौलिक मान्यताओं का निषेध है।

तथा उक्त मिथ्यात्व के प्रचार की प्रेरणा निश्चितरूप से दिगम्बरमत के प्रतिकूल है, तथापि उसके उल्लेख से हरिवंशपुराण के दिगम्बरग्रन्थ होने का खण्डन नहीं होता, क्योंकि उसमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि का निषेध है, जिसकी उपपत्ति हरिवंशपुराण के दिगम्बरग्रन्थ होने पर ही होती है, अन्यथा नहीं।

इस स्थिति में उक्त मिथ्यात्व के प्रचार का उल्लेख हरिवंशपुराण को न तो यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने में समर्थ है, न उसके दिगम्बरग्रन्थ होने को असिद्ध करने में। उक्त उल्लेख की उपपत्ति एक ही मान्यता से हो सकती है, वह यह कि हरिवंश-पुराण के कर्त्ता दिगम्बर जिनसेन ने तत्कालीन परिस्थितियों-वश जैनेतर मान्यताओं को अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है, जैसे यक्ष-यक्षी की पूजा, पंचामृत-अभिषेक आदि को। इस प्रकार यापनीयग्रन्थ का असाधारण धर्म न होने से मिथ्यात्वप्रचार की प्रेरणा का उल्लेखरूप हेतु हरिवंशपुराणकार के यापनीय होने का साधक नहीं है, अत एव वह हेत्वाभास है।

उपर्युक्त प्रमाणों के द्वारा यापनीयग्रन्थ-पोषक हेतुओं के असत्य या हेत्वाभास सिद्ध हो जाने से तथा दिगम्बर ग्रन्थ-साधक हेतुओं के उपलब्ध होने से यह असंदिग्ध-रूपेण सिद्ध हो जाता है कि हरिवंशपुराण दिगम्बर-परम्परा का ग्रन्थ है।

द्वाविंश अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वाविंश अध्याय

स्वयम्भूकृत पउमचरिउ

प्रथम प्रकरण

पउमचरिउ के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण

पं० नाथूराम जी प्रेमी ने लिखा है—"स्वयंभुदेव (वि० सं० ७३४ से ८४० के बीच) ने अपने वंश, गोत्र आदि का कोई उल्लेख नहीं किया। इसी तरह अन्य जैन ग्रन्थकर्त्ताओं के समान अपने गुरु या सम्प्रदाय की कोई चर्चा नहीं की। परन्तु पुष्पदन्त के महापुराण के 'स्वयंभु' शब्द के टिप्पण में उन्हें **आपुलीसंघीय** बतलाया है। ('**सयंभुः पद्धडीबद्धकर्त्ता आपुलीसंघीयः**'—म.पु./पृ.९)। इसलिए वे यापनीयसम्प्रदाय के अनुयायी जान पड़ते हैं। पर उन्होंने पउमचरिउ के प्रारम्भ में लिखा है कि यह रामकथा वर्द्धमान भगवान् के मुखकुहर से विनिर्गत होकर इन्द्रभूति गणधर और सुधर्मा स्वामी आदि के द्वारा चली आई है और रविषेणाचार्य के प्रसाद से मुझे प्राप्त हुई है।" (जै. सा. इ./द्वि.सं./पृ. १९७-१९८)।

यहाँ **पर** शब्द का प्रयोग कर प्रेमी जी ने उक्त टिप्पण से असहमति व्यक्ति की है और कथावतार की दिगम्बरपद्धति का उल्लेख कर 'पउमचरिउ' के दिगम्बरग्रन्थ होने का संकेत दिया है।

श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया लिखती हैं—"स्वयंभू के सम्प्रदाय के विषय में **डॉ० संकटाप्रसाद उपाध्याय** का कथन है कि अधिक निश्चित जानकारी के अभाव में चाहे स्वयंभू के यापनीय-संघीय होने के विषय में कोई अन्तिम निर्णय न हो सके, पर अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर उन्हें दिगम्बरसम्प्रदाय का मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"[१]

किन्तु उक्त विदुषी ने 'पउमचरिउ' ग्रन्थ के सम्पादक **डॉ. एच. सी. भायाणी** के मत का उल्लेख करते हुए लिखा है—"श्री एच० सी० भायाणी भी यही लिखते हैं कि यद्यपि इस सन्दर्भ में हमें स्वयंभू की ओर से कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष वक्तव्य

१. संकटाप्रसाद उपाध्यायकृत 'महाकवि स्वयंभू' पृ.२०१/ भारत प्रकाशन मन्दिर/अलीगढ़ १९६९ ई. (यापनीय और उनका साहित्य/पृ. १५४)।

नहीं मिलता है, परन्तु यापनीय सग्रन्थ अवस्था तथा परशासन से भी मुक्ति स्वीकार करते थे और स्वयंभू अधिक उदारचेता थे, अत: इन्हें यापनीय माना जा सकता है।''[२]

और श्रीमती पटोरिया ने **आपुलीसंघीय**-वाले टिप्पण तथा डॉ० भायाणी के मत का अनुसरण करते हुए पउमचरिउ को यापनीयकृति घोषित किया है तथा अपने मत के समर्थन में कई हेतु प्रस्तुत किये हैं। उन्हीं को अपने ग्रन्थ में उद्धृत करते हुए डॉ० सागरमल जी ने भी उसे यापनीयपरम्परा का ही ग्रन्थ बतलाया है।

श्रीमती पटोरिया ने पउमचरिउ को यापनीयकृति सिद्ध करने के लिए उसमें यापनीयमत के किसी भी मौलिक सिद्धान्त का उल्लेख होना नहीं बतलाया, केवल ऐसी बातों का उल्लेख होना बतलाया है, जो दिगम्बरमत के विरुद्ध हैं, और उन्हें ही यापनीयसिद्धान्त मान लिया है, जबकि उनके यापनीयसिद्धान्त होने का कोई प्रमाण नहीं है। यहाँ मैं पउमचरिउ में उपलब्ध उन विशेषताओं का वर्णन कर रहा हूँ, जो केवल दिगम्बरग्रन्थों में मिलती हैं, श्वेताम्बरीय या यापनीय गन्थों में नहीं। उनसे सिद्ध हो जाता है कि पउमचरिउ दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है, श्वेताम्बर या यापनीय परम्परा का नहीं।

१

कथावतार की दिगम्बरीय पद्धति

पूर्व में **रविषेणकृत पद्मपुराण** नामक उन्नीसवें अध्याय में बतलाया गया है कि दिगम्बरीय पुराणों में राजा श्रेणिक के प्रश्न करने पर गौतम गणधर कथा का वर्णन करते हैं, जब कि श्वेताम्बरीय पुराणों में जम्बूस्वामी को सम्बोधित करते हुए सुधर्मा स्वामी के द्वारा कथा सुनाई जाती है। इस विशेषता को सभी दिगम्बर और श्वेताम्बर विद्वान् स्वीकार करते हैं। स्वयम्भूकृत पउमचरिउ (१/१/९/१-९) में दिगम्बर-पद्धति से ही कथावतार होता है। यह उसके दिगम्बरग्रन्थ होने का प्रमाण है।

२

सोलह स्वप्नों का वर्णन

जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं-''पउमचरियं (विमल-सूरिकृत) में मरुदेवी और पद्मावती, इन तीर्थंकर-माताओं के द्वारा १४ स्वप्न देखने का उल्लेख है। यापनीय एवं दिगम्बर परम्परा १६ स्वप्न मानती है। इस प्रकार इसे भी ग्रन्थ के श्वेताम्बर-परम्परा से सम्बद्ध होने के सन्दर्भ में प्रबल साक्ष्य माना जा सकता है।'' (पृष्ठ २१५)।

---

२. डॉ. एच. सी. भायाणी-कृत 'पउमचरिउ' की भूमिका/पृ.१३,५ (या.औ.उ.सा./पृ. १५४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इन वचनों से लेखक महोदय स्वयं सिद्ध कर देते हैं कि स्वयंभूकृत पउमचरिउ दिगम्बरग्रन्थ है, क्योंकि उसमें मरुदेवी के द्वारा निम्नलिखित सोलह स्वप्न देखे जाने का वर्णन है—१. मद से गीले गण्डस्थलवाला मत्त गज, २. कमलसमूह को उखाड़ता हुआ वृषभ, ३. विशाल नेत्रोंवाला सिंह, ४. नवकमलों पर आरूढ़ लक्ष्मी, ५. उत्कट गन्धवाली पुष्पमाला, ६. मनोहर पूर्णचन्द्र, ७. प्रचण्ड किरणोंवाला सूर्य, ८. परिभ्रमण करता हुआ मीनयुगल, ९. जल से भरा हुआ मंगल-कलश, १०. कमलों से आच्छन्न सरोवर, ११. गर्जना करता हुआ समुद्र, १२. शोभायमान सिंहासन, १३. घण्टियों से मुखरित विमान, १४. अत्यन्त धवल नागालय, १५. चमकता हुआ मणिसमूह, १६. प्रज्वलित अग्नि। (प.च./१/१/१५/१-८ पृ.२२)।

लेखक महोदय ने लिखा है कि "यापनीयपरम्परा भी सोलह स्वप्न मानती है।" किन्तु ऐसा कोई यापनीयग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिसमें सोलह स्वप्नों का वर्णन हो। उन्होंने दिगम्बरग्रन्थों को ही यापनीयग्रन्थ मानकर ऐसी धारणा बना ली है। सत्य इसके विपरीत है। यापनीयसंघ श्वेताम्बर-आगमों को ही प्रमाण मानता था, अतः उसके द्वारा चौदह स्वप्नों का माना जाना ही युक्तिसंगत सिद्ध होता है। इसलिए सोलह स्वप्नों की मान्यता एकमात्र दिगम्बरीय मान्यता है। फलस्वरूप पउमचरिउ में सोलह स्वप्नों का उल्लेख उसके दिगम्बरग्रन्थ होने का प्रबल साक्ष्य है।

३
सोलह कल्पों की मान्यता

उक्त ग्रन्थलेखक महोदय का कथन है कि "**पउमचरियं** (विमलसूरिकृत) में १२ देवलोकों का उल्लेख है, जो कि श्वेताम्बरपरम्परा की मान्यतानुरूप है, जब कि यापनीय रविषेण और दिगम्बरपरम्परा के अन्य आचार्य देवलोकों की संख्या १६ मानते हैं। अतः इसे भी ग्रन्थ के श्वेताम्बरपरम्परा से सम्बद्ध होने का प्रमाण माना जा सकता है।" (जै.ध.या.स./पृ.२१६-२१७)।

इस हेतु के द्वारा भी लेखक महोदय ने स्वयंभूकृत पउमचरिउ को दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध किया है, क्योंकि उसमें भी सोलह कल्प ही माने गये हैं। सीता सोलहवें (अच्युत) स्वर्ग में इन्द्र हो गयी थीं। वह इन्द्र वहाँ से नरक में आकर लक्ष्मण और रावण को सम्बोधित करता है और दया से अभिभूत होकर उनसे कहता है—"चलो, मैं तुम दोनों को शीघ्र ही अच्युत नामक सोलहवें स्वर्ग में ले चलता हूँ"—

विण्णि वि जण सहसा सोलहमउ।
सग्गु पराणमि अच्चुअ-णामउ॥ ५/८९/११/४॥

उक्त ग्रन्थलेखक महोदय ने यापनीयपरम्परा में भी सोलह (कल्पों) की मान्यता सिद्ध करने के लिए पद्मपुराण के कर्त्ता रविषेण को यापनीय कहा है। किन्तु पूर्व में सिद्ध किया जा चुका है कि वे यापनीय नहीं, अपितु दिगम्बर थे। अतः यापनीयपरम्परा में सोलह कल्पों की मान्यता अप्रामाणिक है। यह एकमात्र दिगम्बरमान्यता है। अतः सोलह कल्पों के उल्लेख से स्वयम्भूकृत पउमचरिउ दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध होता है।

४

स्त्रीमुक्तिनिषेध

उक्त ग्रन्थलेखक लिखते हैं—"पउमचरियं (विमलसूरिकृत) में उसके श्वेताम्बर होने के सन्दर्भ में जो सबसे महत्त्वपूर्ण साक्ष्य उपलब्ध है, वह यह कि उसमें कैकयी को मोक्ष की प्राप्ति बताई गई है—'**सिद्धिपयं उत्तमं पत्ता**' (पउमचरियं ८३/१२)। इस प्रकार पउमचरियं स्त्रीमुक्ति का समर्थक माना जा सकता है। यह तथ्य दिगम्बरपरम्परा के विरोध में जाता है। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यापनीय भी स्त्रीमुक्ति तो स्वीकार करते थे, अतः इस दृष्टि से यह ग्रन्थ श्वेताम्बर और यापनीय दोनों परम्पराओं से सम्बद्ध माना जा सकता है।" (जै.ध.या.स./२१७)।

मान्य ग्रन्थलेखक ने इस महत्त्वपूर्ण हेतु से स्वयम्भूकृत पउमचरिउ को असन्दिग्ध-रूप से दिगम्बरग्रन्थ सिद्ध कर दिया है, क्योंकि जिस कैकयी को विमलसूरि ने पउम-चरियं में मोक्ष की प्राप्ति बताई है, उसे स्वयम्भू ने मोक्ष की प्राप्ति न बता कर मात्र देवत्व का प्राप्त होना बतलाया है। केवलज्ञानी राम से जब सीता का जीव अच्युतेन्द्र पूछता है कि दशरथ की अपराजिता, कैकयी और सुप्रभा रानियों को कौन-सी गति प्राप्त हुई, तब वे कहते हैं—

अवराइय - केक्कय - सुप्पहउ।
कइकइ-सहियउ परिसह-सहउ॥
अण्णउ वि घोर-तव - तत्तियउ।
सव्वउ देवत्तणु पत्तियउ॥ ५/९०/१/७-८॥

अनुवाद—"अपराजिता, कैकयी, सुप्रभा आदि, जिन्होंने कैकयी के साथ परीषह सहन किये, तथा अन्य लोग, जिन्होंने घोर तप तपा, उन सबने देवत्व प्राप्त किया है।

इतना ही नहीं, केवली भगवान् राम सीता के जीव अच्युतेन्द्र को यह भी बतलाते हैं कि उसे भी मनुष्यभव में पुरुषपर्याय से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी। वह पहले चक्रवर्ती बनेगा, पश्चात् वैजयन्त स्वर्ग का देव और तदनन्तर रावण के जीव के तीर्थंकर

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होने पर उसका गणधर बनेगा। तत्पश्चात् उसकी (सीता के जीव अच्युतेन्द्र की) मुक्ति होगी—

अहमिन्द-महासुहु अणुहवें वि।
वर-वइजयन्त-सग्गहों चवें वि॥
पुणु गणहरु होसहि तासु तुहुँ।
तहिं कालें लहेसहि मोक्ख-सुहु॥ ९०/१०/१-२॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि स्वयम्भू स्त्रीमुक्तिविरोधी दिगम्बरसम्प्रदाय के थे। पउमचरिउ में स्त्रीमुक्तिनिषेध का एक महत्त्वपूर्ण प्रमाण यह भी है कि सीता की अग्निपरीक्षा के बाद जब राम उनसे घर चलने का आग्रह करते हैं, तब वे विनम्रतापूर्वक इनकार कर देती हैं और कहती हैं कि अब मैं ऐसा काम करना चाहती हूँ, जिससे मुझे दुबारा स्त्री न बनना पड़े,[३] मैं जन्म, जरा और मरण का अन्त करूँगी।[४]

यहाँ विचारणीय है कि सीता का इतना ही कहना पर्याप्त था कि "मैं जन्म, जरा और मरण का अन्त करूँगी।" इससे ही स्त्री-पुरुष आदि सभी पर्यायों से सदा के लिए छुटकारा मिल जाता है। तब उन्होंने अलग से स्त्रीपर्याय से छुटकारा पाने का पौरुष करने की बात क्यों कहीं? इससे ध्वनित होता है कि वे जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए स्त्रीपर्याय से छुटकारा पाना अनिवार्य मानती हैं। अतः उनके द्वारा उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग सिद्ध करता है कि स्वयंभू स्त्रीपर्याय से मुक्ति असम्भव मानते हैं, जो उनके दिगम्बर होने का सूचक है।

५
परतीर्थिकमुक्ति-निषेध

डॉ० एच० सी० भायाणी तथा उनके आधार पर श्रीमती पटोरिया एवं डॉ० सागरमल जी का कथन है कि स्वयंभूकृत पउमचरिउ में परशासन से भी मुक्ति मानी गई है, क्योंकि उसमें अन्य देवताओं के प्रति भी समान भक्तिभाव दर्शाया गया है। अतः स्वयंभू यापनीय थे। (जै. ध. या. स./पृ.१८४)। इसके उदाहरण में उन्होंने पउमचरिउ का निम्न पद्य उद्धृत किया है—

अरहन्तु बुद्धु तुहुँ हरि हरु वि तुहुँ अण्णाण-तमोह-रिउ।
तुहुँ सुहुमु णिरञ्जणु परमपउ तुहुँ रवि वम्भु सयम्भु सिउ॥
३/४३/१९/९॥

---

३. एवहिँ तिह करेमि पुणु रहुवइ। जिह ण होमि पडिवारी तियमइ॥ ८३/१७/९॥ पउमचरिउ।
४. महु विषय-सुहेंहिँ पज्जत्तउ। छिन्दमि जाइ-जरा-मरणु॥ ८३/१७/१०॥ पउमचरिउ।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"अरहन्त, बुद्ध तुम्ही हो। हरि, हर और अज्ञानरूपी तिमिर के शत्रु तुम्हीं हो। तुम सूक्ष्म, निरंजन और परमपद हो। तुम सूर्य, ब्रह्मा, स्वयम्भू और शिव हो।"

आश्चर्य है कि इस पद्य को इन विद्वानों ने परदेवताओं के प्रति समान भक्ति एवं परशासन से मुक्ति का प्रतिपादक कैसे मान लिया! इस पद्य में तो एकमात्र चन्द्रप्रभ जिन को अनेक नामों से सम्बोधित कर उनकी स्तुति की गई है, एक मात्र चन्द्रप्रभ को ही बुद्ध आदि नामों से अभिहित किया गया है। ऐसा कर केवल चन्द्रप्रभ जिन के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट की गयी है।

पउमचरिउ में एक अन्य स्थल पर भगवान् ऋषभनाथ को भी इन्हीं विभिन्न नामों से सम्बोधित कर उनके प्रति अनन्य भक्तिभाव प्रकट किया गया है। इन्द्र अपने लोकपाल आदि देवताओं से कहता है—"जिन के नाम शिव, शंभु, जिनेश्वर, देवदेव, महेश्वर, जिन, जिनेन्द्र, कालंजय, शंकर, स्थाणु , हिरण्यगर्भ, तीर्थंकर---हैं, इन नामों से जो भुवनतल में देवताओं, नागों और मनुष्यों के द्वारा संस्तुत्य हैं, तुम उन परम आदरणीय ऋषभनाथ के चरणयुगल की भक्ति में अपने को डुबा दो।" (५/८७/३/१-८)।

ध्यान देने योग्य है कि यहाँ अनेक नामों से केवल ऋषभनाथ को ही संस्तुत्य बतलाया गया है और केवल उन्हीं की भक्ति में डूबने की प्रेरणा दी गई है। इन्द्र यह भी कहता है, "जिनके प्रसाद से यह इन्द्रत्व मिलता है, देवत्व और सिद्धत्व मिलता है, जिन्होंने एक अकेले ज्ञान-समुज्ज्वल चक्र से संसार रूपी घोर शत्रु का हनन कर दिया है, जिन्होंने भवसागर के घोर दुःखों का निवारण किया है, जो भव्य जीवों को खेल-खेल में तार देते हैं, सुमेरुपर्वत के शिखर पर देवेन्द्र जिनका मंगल अभिषेक करते हैं, उनको सदा आदरपूर्वक प्रणाम करना चाहिए, यदि हम संसार और मृत्यु का विनाश करना चाहते हैं।" (५/८७/२/७-१०)।

इस कथन में केवल भगवान् ऋषभनाथ को ही जन्म-मृत्यु का विनाशक बतलाया गया है। यह ध्यान देने योग्य है कि **पउमचरिउ** में सर्वत्र जैन तीर्थंकरों को ही गुणपरक निरुक्तियों के आधार पर जैनेतर देवताओं जैसे नाम से सम्बोधित कर उनकी भक्ति आदि करने के लिए कहा गया है और उन्हें ही जन्ममृत्यु का विनाशक बतलाया गया है। जैनेतर देवताओं को तीर्थंकरों के नाम से अभिहित कर उनकी भक्ति आदि करने को नहीं कहा गया, न ही उन्हें जन्म-मरण का नाशक बतलाया गया है। इससे सिद्ध है कि स्वयम्भू कवि परशासन से मुक्ति के समर्थक नहीं हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पउमचरिउ में कहा गया है कि महामुनि के उपदेश से धनदत्त ने मिथ्यात्व छोड़कर अणुव्रत ग्रहण कर लिये[५] तथा पद्मरुचि और वृषभध्वज के विषय में कहा गया है कि वे दोनों सम्यग्दर्शन से युक्त थे और श्रावकव्रतों को धारण किये हुए थे।[६] इसी प्रकार जब जिनधर्मानुयायी श्रीभूति से जिनवचनों से विमुख[७] राजा स्वयंभू उसकी वेदवती नामक कन्या को माँगता है, तब श्रीभूति कहता है कि मैं अपनी सोने जैसी बेटी मिथ्यादृष्टि को कैसे दे दूँ?[८] इन वचनों से स्पष्ट होता है कि पउमचरिउ के कर्त्ता स्वयम्भू जिनशासन को न माननेवाले को मिथ्यादृष्टि मानते हैं। और मिथ्यादृष्टि मोक्ष का अधिकारी नहीं है, इससे सिद्ध है कि वे परशासन से मुक्ति के समर्थक नहीं हैं।

एक अन्य स्थल पर लक्ष्मण के पुत्र अपने पिता से कहते हैं–"हे तात! सुनिये, --- यह संसाररूपी समुद्र आठकर्मरूपी जलचरों से भयंकर है। इसमें दुर्गतियों का सीमाहीन खारा जल भरा हुआ है।---यह मिथ्यावादों के भयंकर तूफान से आन्दोलित है।[९] खोटे शास्त्ररूपी द्वीपों के समूह इसमें विद्यमान हैं।[१०] ऐसे अनन्त संसार-समुद्र में हमने मनुष्यजन्म बड़ी कठिनाई से पाया है। अब इस मनुष्यशरीर से हम जिनदीक्षारूपी नाव द्वारा उस अजर-अमर देश को जायेंगे, जहाँ पर यम की छाया नहीं पड़ती।"[११]

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि लक्ष्मणपुत्र केवल जिनदीक्षा को ही मोक्ष की नौका कहते हैं, शेष मतों को मिथ्यावाद और खोटे शास्त्रों का प्ररूपक बतलाते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि कवि स्वयंभू परशासन से मुक्ति स्वीकार नहीं करते। स्वयंभू ने जिनवचनों के श्रवण में रुचि न रखने वालों को अभव्य और मूर्ख भी कहा है। इससे भी उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है। अतः स्वयम्भू इस अपेक्षा से भी यापनीय सिद्ध नहीं होते ।

६
सचेलमुक्ति का प्रतिपादन नहीं

श्रीमती पटोरिया एवं डॉ० सागरमल जी ने डॉ० एच० सी० भायाणी के इस कथन को उद्धृत किया है कि "यापनीय सग्रन्थ अवस्था तथा परशासन से भी मुक्ति

---

५. रिसि-वयणें विमुक्क-मिच्छत्तें। लइयइँ अणुवयाइँ धणदत्तें॥ ५ /८४/८/१ ॥ पउमचरिउ।
६. विण्णि व जण सम्मत्त-णिउत्ता। सावय-वय-भर-धुर-संजुत्ता॥ ५/८४/१२/७॥ पउमचरिउ।
७. सम्भु वि सिय-सयण-विमुक्कउ। जिणवर-वयण-परम्मुहउ॥ ५/८४/१७/९॥ पउमचरिउ।
८. सिरिभूइ पजम्पिउ कणय-वण्ण। किह मिच्छादिट्ठिहं देमि कण्ण॥ ५/८४/१६/६॥ पउमचरिउ।
९. मिच्छत्त-गरुय वायन्त वाएँ। ५/८६/१०/६॥ पउमचरिउ।
१०. अलियागम -सयल-कुदीव णियरें॥ ५/८६/ १०/८॥ पउमचरिउ।
११. जिण-पावज्ज-तरण्डएँण, जाहुँ देसु जहिं जणु अजरामरु॥ ५/८६/१०/११॥ पउमचरिउ।

स्वीकार करते थे और स्वयंभू अपेक्षाकृत अधिक उदारचेता थे, अतः इन्हें यापनीय माना जा सकता है।" (या.औ.उ.सा./पृ.१५४, जै.ध.या.स./पृ.१८१)।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि डॉ० भायाणी ने यापनीयों को सग्रन्थ अवस्था और परशासन से मुक्ति स्वीकार करने वाला कहा है, स्वयंभू को नहीं। स्वयंभू को केवल अपेक्षाकृत अधिक उदारचेता कहा है और केवल उदारचेता होने मात्र से यह कल्पना कर ली गई कि वे भी सग्रन्थ अवस्था और परशासन से मुक्ति स्वीकार करते थे, अतः यापनीयसम्प्रदाय के थे।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उक्त विद्वानों में से किसी ने भी पउमचरिउ से सग्रन्थमुक्ति के उल्लेख का एक भी उदाहरण नहीं दिया। केवल डॉ० भायाणी के 'उदारचेता' वचन से ही स्वयंभू को सग्रन्थमुक्ति का समर्थक मान लिया। उदाहरण देना संभव भी नहीं था, क्योंकि ग्रन्थ में सग्रन्थमुक्ति का उदाहरण है ही नहीं। पुरुषों के द्वारा सर्वत्र निर्ग्रन्थदीक्षा लिये जाने का ही वर्णन है और निर्ग्रन्थ का अर्थ वस्त्ररहित ही बतलाया गया है।

चार ज्ञान के धारक एक महामुनि, तडित्केश के पूर्वभव का वर्णन करते हुए उससे कहते हैं कि जब तुम साधु थे, तब यह उदधिकुमार देव, जो पूर्वभव में धनुर्धारी था, तुम्हारे पास आया और तुम्हें निर्ग्रन्थ देखकर उसने तुम्हारा उपहास किया–"**णिग्गन्थु णिएँवि उवहासु कउ।**" (प.च./१/६/१५/४)। यहाँ उपहास किये जाने से स्पष्ट होता है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द नग्नता का सूचक है। तथा राम जब निर्ग्रन्थ-दीक्षा ले लेते हैं और तप कर रहे होते हैं, तब सीता का जीव अच्युतेन्द्र अच्युत स्वर्ग से आकर राम के मुनित्व की परीक्षा लेते हुए उनसे मुनित्व छोड़कर अपने साथ रमण करने की याचना करता है और जब राम ध्यान में अडिग रहते हैं तब कहता है—

णिच्चलु पाहाणु व किं अच्छहि।
सवडम्मुहु स-विआरु णियच्छहि॥
लइउ पिसाएं जेम अलज्जिउ।
कालु म खेवहि **वत्थ-विवज्जउ**॥

पउमचरिउ/५/८९/३/६-७।

अनुवाद—"पत्थर की तरह अडिग क्यों खड़े हो ? प्रेमभरी दृष्टि से मेरी ओर देखो। लगता है तुम्हें भूत लग गया है, इसीलिए इतने निर्लज्ज दिखाई दे रहे हो, **वस्त्रविहीन होकर** अपना समय व्यर्थ गँवा रहे हो।"

इन वचनों से और भी स्पष्ट हो जाता है कि पउमचरिउ में **निर्ग्रन्थ** शब्द **वस्त्रविहीन (नग्न) साधु** का वाचक है तथा राम आदि सभी पुरुषों ने दिगम्बरदीक्षा ग्रहण की

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

थी। पउमचरिउ के ये उल्लेख सिद्ध करते हैं कि स्वयम्भू दिगम्बरलिंग से ही मुक्ति मानते हैं, सचेललिंग से नहीं। अतः वे यापनीय नहीं, अपितु दिगम्बर हैं।

७

दिव्यध्वनि द्वारा चौदह गुणस्थानों का उपदेश

पउमचरिउ में बतलाया गया है कि भगवान् ऋषभदेव ने चौदह गुणस्थानों पर आरूढ़ होते हुए मोक्ष प्राप्त किया था[१२] तथा अपनी दिव्यध्वनि से भी गुणस्थानों का उपदेश दिया था।[१३] यह कथन श्वेताम्बर और यापनीय मतों के विरुद्ध है, क्योंकि श्वेताम्बर-आगमों में गुणस्थानों का उल्लेख नहीं है। उत्तरवर्ती साहित्य में उल्लेख हुआ है, किन्तु उसे श्वेताम्बर विद्वानों ने प्रक्षिप्त माना है। यापनीय-सम्प्रदाय श्वेताम्बर-आगमों को ही प्रमाण मानता था, अतः उक्त सम्प्रदाय में भी गुणस्थान-अवधारणा का अभाव था। इसके अतिरिक्त गुणस्थान-सिद्धान्त इन सम्प्रदायों की सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति एवं केवलिभुक्ति की मान्यताओं के विरुद्ध है, इस कारण भी इन सम्प्रदायों में गुणस्थानसिद्धान्त का मूलतः अभाव है। अतः पउमचरिउ में भगवान् ऋषभदेव के गुणस्थानों पर आरूढ़ होने एवं दिव्यध्वनि द्वारा उनका उपदेश दिये जाने का कथन ग्रन्थ के यापनीयपरम्परा का न होकर दिगम्बर-परम्परा के होने का अन्यतम प्रमाण है।

पउमचरिउ में भगवान् ऋषभदेव को राजा श्रेयांस द्वारा जिस विधि से आहार दिये जाने एवं पञ्चाश्चर्य होने का वर्णन है, वह दिगम्बरपरम्परा का अनुसरण करता है।[१४] मुनि गुप्त और सुगुप्त के लिए राम एवं सीता द्वारा आहारदान किये जाने की विधि भी वैसी ही वर्णित की गयी है।[१५] यह भी ग्रन्थ के दिगम्बरपरम्परा से सम्बद्ध होने का प्रमाण है।

पउमचरिउ में इन यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन होने से स्पष्ट है कि यह यापनीयग्रन्थ नहीं है, बल्कि दिगम्बरग्रन्थ है। अतः इसे यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए जो हेतु प्रस्तुत किये गये हैं, वे या तो असत्य हैं या हेत्वाभास हैं। विचार करने से वे सभी हेत्वाभास सिद्ध होते हैं।

---

१२. चउदसविह-गुणथाणु चडन्तहों॥ १/३/२/८॥ पउमचरिउ।
१३. तव-सीलोववास-गुणठाणइँ॥ १/३/११/३॥ पउमचरिउ।
१४. पउमचरिउ १/२/१६/११, १७/१-१०।
१५. पउमचरिउ २/३४/१२/१-११, १३/१-९।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय प्रकरण

यापनीयपक्षधर हेतुओं की हेत्वाभासता

१

'पद्म' नाम का प्रयोग यापनीयग्रन्थ का असाधारण धर्म नहीं

यापनीयपक्ष

पउमचरिउ में राम के लिए **पद्म** नाम का प्रयोग किया गया है, जो दिगम्बर-परम्परानुसारी नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि ग्रन्थ यापनीयपरम्परा का है। (या. औ.उ.सा./पृ.१५४-१५५)।

दिगम्बरपक्ष

१.रविषेणकृत पद्मपुराण और स्वयंभूकृत पउमचरिउ दोनों में स्त्रीमुक्ति-निषेध आदि यापनीयमत-विरुद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, जो उनके यापनीयग्रन्थ न होने और दिगम्बरग्रन्थ होने का अखण्ड्य प्रमाण है। उनमें राम के लिए **पद्म** नाम का प्रयोग मिलता है, जिससे सिद्ध है कि **पद्म** नाम का प्रयोग यापनीयग्रन्थ का असाधारणधर्म नहीं है। अतः वह 'पउमचरिउ' के यापनीयग्रन्थ होने का हेतु नहीं, अपितु हेत्वाभास है।

२. दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में पद्म और राम भिन्न-भिन्न बलदेवों के नाम बतलाये गये हैं। दिगम्बरपरम्परा में इसका उदाहरण **तिलोयपण्णत्ती** की निम्न-लिखित गाथा में दर्शनीय है—

विजयाचला सुधम्मो सुप्पह-णामो सुदंसणो णंदी।
तह णंदमित्तरामा पउमो णव होंति बलदेवा॥ ४/५२४॥

श्वेताम्बरपरम्परा में उक्त उदाहरण नीचे दिये श्लोक में मिलता है—

अचलो विजयो भद्रः सुप्रभश्च सुदर्शनः।
आनन्दो नन्दनः पद्मो रामः शुक्लो बलास्त्वमी॥[१६]

स्वयं श्वेताम्बराचार्य विमलसूरि ने पद्म और राम को एक-दूसरे से भिन्न बतलाया है—

अयलो विजयो भद्दो सुप्पभ सुदंसणो य नायव्वो।
आणंदो नंदणो पउमो नवमो रामो य बलदेवो॥[१७]

---

१६. हेमचन्द्रकृत अभिधानचिन्तामणि/ काण्ड ३/ श्लोक ३६२।
१७. विमलसूरिकृत पउमचरिय/पर्व ५/गाथा १५४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

फिर भी विमलसूरि ने राम के लिए 'पद्म' नाम का प्रयोग किया है और दिगम्बर रविषेण तथा स्वयम्भू ने भी ऐसा ही किया है। इससे सिद्ध होता है कि दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद से पहले जैनपरम्परा में 'पद्म' नाम भी राम के लिए प्रसिद्ध था। इसी कारण दोनों परम्पराओं के पुराणकारों ने इस नाम का प्रयोग किया है। यतः यह नाम दोनों परम्पराओं में प्रयुक्त हुआ है, अतः यह यापनीयग्रन्थ का असाधारणधर्म नहीं है। फलस्वरूप यह 'पउमचरिउ' के यापनीयग्रन्थ होने का हेतु नहीं है, इससे सिद्ध है कि यह हेत्वाभास है।

२

दिगम्बरपरम्परा में भी नैगमदेव मान्य

यापनीयपक्ष

स्वयंभू के एक अन्य ग्रन्थ **रिट्ठणेमिचरिउ** में उल्लेख है कि देवकी ने भाई के घर में क्रम से तीन युगलों के रूप में छह पुत्रों को जन्म दिया, जिन्हें कंस से बचाने के लिए इन्द्र की आज्ञा से नैगमदेव सुभद्रिल नगर के सुदृष्टि सेठ के घर पहुँचाता रहा और उसके मृत पुत्रों को देवकी के पास लाकर छोड़ता रहा। यद्यपि यह उल्लेख आचार्य गुणभद्र ने भी अपने **उत्तरपुराण** (७१/२९५) में किया है, तथापि **हरिणेगमेसि** (नैगमदेव) का यह उल्लेख श्वेताम्बर-परम्परा के अनुरूप है।--- पुन्नाटसंघीय जिनसेन के हरिवंशपुराण (३५/४) तथा हरिषेण के बृहत्कथाकोश (उग्रसेन-वशिष्ठ-कथानक १०६/२२५) में भी **नैगमदेव** का देवकी के पुत्रों के रक्षकरूप में उल्लेख है। अतः जिनसेन और हरिषेण के समान स्वयंभू भी यापनीय हैं। (या. औ.उ.सा./पृ.१५५-१५६)।

दिगम्बरपक्ष

स्वयम्भू ने 'पउमचरिउ' में, जिनसेन ने 'हरिवंशपुराण' में तथा हरिषेण ने 'बृहत्कथा-कोश' में सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि यापनीय-मान्यताओं का निषेध किया है, अतः ये दिगम्बरग्रन्थ हैं, यह सिद्ध किया जा चुका है। 'बृहत्कथाकोश' के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण आगे तेईसवें अध्याय में प्रस्तुत किये जायेंगे। गुणभद्र का उत्तरपुराण भी दिगम्बर-परम्परा का ग्रन्थ है। इन सब में (स्वयंभू के 'रिट्ठणेमिचरिउ' में भी) नैगमदेव का देवकीपुत्रों के रक्षकरूप में उल्लेख है। इसलिए इस उल्लेख को केवल श्वेताम्बरपरम्परा के अनुरूप मानना सत्य नहीं है। यतः यह श्वेताम्बरपरम्परा का असाधारण धर्म नहीं है, इसलिए यह उल्लेख स्वयम्भूकृत 'रिट्ठणेमिचरिउ' के यापनीय-ग्रन्थ एवं स्वयम्भू के यापनीय होने का हेतु नहीं है, अतः सिद्ध है कि यह हेत्वाभास है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

आचार्य प्रभव का उल्लेख यापनीयग्रन्थ का असाधारण धर्म नहीं

यापनीयपक्ष

जिन आचार्यों की परम्परा से स्वयंभू को रामकथा प्राप्त हुई है, उनमें श्वेताम्बर-परम्परा के आचार्य प्रभव का भी उन्होंने उल्लेख किया है। इससे वे श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण माननेवाले यापनीयसंघी सिद्ध होते हैं। (या.औ.उ.सा./पृ.१५६)।

दिगम्बरपक्ष

पद्मपुराण के अध्याय (१९) में बतलाया गया है कि रविषेण ने पद्मपुराण (पद्मचरित) की रचना श्वेताम्बराचार्य विमलसूरि के 'पउमचरिय' के आधार पर की है, अतः उन्होंने भूल से आचार्य प्रभव का भी उल्लेख कर दिया है। और स्वयंभू को रामकथा की प्राप्ति रविषेण से हुई है, अतः उन्होंने रविषेण का अनुकरण कर आचार्य प्रभव का नाम रख दिया है। किन्तु इससे वे यापनीय सिद्ध नहीं होते, क्योंकि उन्होंने पउमचरिउ में यापनीयमत-विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इससे सिद्ध है कि 'प्रभव स्वामी' का उल्लेख 'पउमचरिउ' के यापनीयग्रन्थ एवं स्वयम्भू के यापनीय होने का हेतु नहीं, अपितु हेत्वाभास है।

४

देवनिर्मित कमलों के ऊपर चलना दिगम्बरीय मान्यता भी

यापनीयपक्ष

स्वयंभू ने भगवान् के चलने पर पैरों के नीचे देवनिर्मित कमलों के रखे जाने को एक अतिशय बताया है—**पण्णारहकमलायत्त-पाउ** (१,७/४)। यह भी श्वेताम्बर मान्यता है। (या.औ.उ.सा./पृ.१५७)।

दिगम्बरपक्ष

आचार्य समन्तभद्रकृत **स्वयम्भूस्तोत्र** का निम्न पद्य दर्शनीय है-

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं, सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै॥ २९॥

अनुवाद—"हे पद्मप्रभ जिन! आपने कामदेव को चूर-चूर किया है और सहस्रदल कमलों के मध्यभाग पर चलनेवाले आपने चरणकमलों के द्वारा नभस्तल को पल्लवों से व्याप्त जैसा करते हुए प्रजा की विभूति के लिए भूतल पर विहार किया है।"

दिगम्बराचार्य समन्तभद्र ने इस पद्य में भगवान् को कमलों पर चलनेवाला बतलाया है। आचार्य वसुनन्दी ने भी '**देवागमनभोयान**' इस आप्तमीमांसा के प्रथम श्लोक की टीका में कहा है—"**नभसि गगने हेममयाम्भोजोपरि यानं नभोयानम्**" अर्थात् भगवान् का आकाश में स्वर्णकमलों के ऊपर गमन करना नभोयान कहलाता है। (समन्तभद्र-ग्रन्थावली / पृ.४)

इस प्रकार भगवान् का देवनिर्मित कमलों के ऊपर चलना दिगम्बरों में भी मान्य है। अतः उसे केवल श्वेताम्बरीय मान्यता कहना असत्य है। इसलिए पउमचरिउ को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त किया गया यह हेतु यापनीयग्रन्थ का असाधारणधर्म न होने से हेत्वाभास है।

५

मागधीभाषा में उपदेश दिगम्बरपरम्परा में भी मान्य

यापनीयपक्ष

"तीर्थंकर का मागधी भाषा में उपदेश देना श्वेताम्बर मान्यता ही कही जा सकती है। दिगम्बरपरम्परा के अनुसार समवशरण में तीर्थंकर की दिव्यध्वनि खिरती है, जो सर्वभाषारूप होती है।" (या.औ.उ.सा. / पृ.१५७)।

दिगम्बरपक्ष

दिगम्बरग्रन्थ तिलोयपण्णत्ती में भगवान् के चौंतीस अतिशयों में से १० जन्मगत, ११ केवलज्ञानजन्य और १३ देवकृत बतलाये गये हैं, जिनमें केवलज्ञानजन्य अतिशयों में ११वाँ अतिशय अठारह महाभाषा तथा सात सौ क्षुद्रभाषा युक्त दिव्यध्वनि है। (ति. प.४/९०५-९२३)। किन्तु श्रुतसागरसूरि ने आचार्य कुन्दकुन्दकृत दंसणपाहुड (गाथा ३५) की टीका में लिखा है कि भगवान् के चौंतीस अतिशयों में से १० जन्मजात, १० घातिकर्मक्षय-जात और १४ देवोपनीत होते हैं। इनमें देवोपनीत चौदह अतिशयों में पहला अतिशय सर्वार्धमागधी भाषा है। सर्वार्धमागधी भाषा का अर्थ बतलाते हुए श्रुतसागरसूरि कहते हैं कि दिव्यध्वनि का अर्धभाग तो भगवान् की भाषा का होता है, जो मगधदेश की भाषा होती है और आधा भाग समस्त भाषाओं का होता है, इसलिए भगवान् की भाषा को सर्वार्धमागधी भाषा कहते हैं। भाषा में उक्त प्रकार का परिणमन मगधदेवों के सन्निधान से होता है, इसलिए उसे देवोपनीत कहना युक्तिसंगत है।[१८]

---

१८. "देवोपनीताश्चतुर्दशातिशयाः, तथाहि-सर्वार्धमागधीका भाषा कोऽयमर्थः? अर्द्धं भगवद्भाषा मगधदेशभाषात्मकम्। अर्द्धं च सर्वभाषात्मकम्। कथमेवं देवोपनीतत्वं चेत्? मगधदेवसन्निधाने तथा परिणामतया भाषया संस्कृतभाषया प्रवर्तते।" श्रुतसागरटीका / दंसणपाहुड / गाथा ३५ / पृ.५६-५७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस प्रकार दिगम्बर-परम्परा में भी तीर्थंकर के द्वारा मागधीभाषा में उपदेश दिये जाने का कथन उपलब्ध होता है। अतः उसे केवल श्वेताम्बरमान्यता कहना सत्य नहीं हैं। इसलिए पउमचरिउ को यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त किया गया यह हेतु भी हेत्वाभास है, क्योंकि यह यापनीयग्रन्थ का असाधारणधर्म नहीं है।

६

अदिगम्बरीय मान्यताओं का यापनीय मान्यता होना अप्रामाणिक

यापनीयपक्ष

१. स्वयंभू ने अपने पउमचरिउ (२/३४/८/४-५) में **अनस्तमित-भोजन** का वर्णन करते हुए कहा है कि गन्धर्वदेव दिन के पूर्व में, सभी देव दिन के मध्य में, पिता-पितामह दिन के अन्त में तथा राक्षस, भूत, पिशाच और ग्रह रात्रि में खाते हैं। यक्ष-राक्षसादिकों का यह कवलाहार दिगम्बरपरम्परा को इष्ट नहीं है, उनके अनुसार देवताओं का मानसिक अमृताहार होता है।[१९]

२. पउमचरिउ में १६वें स्वर्ग में अवस्थित सीता के जीव स्वयंप्रभदेव का रावण तथा लक्ष्मण को सम्बोधित करने के लिए तीसरी पृथिवी बालुकाप्रभा में गमन बताया गया है (२/८९/८/३-४)। धवलाटीका के अनुसार १३वें से १६वें स्वर्ग तक के देव प्रथम नरक के चित्राभाग से आगे नहीं जाते हैं। (ष.खं./पु.४/पृ. २३८-२३९)।

३. पउमचरिउ में भगवान् अजितनाथ के वैराग्य का कारण म्लान कमल बताया गया है (१/५/२/२-३) और तिलोयपण्णत्ती में उल्कापात (४/६१५)।

४. भगवान् महावीर के द्वारा चरणाग्र से मेरु का कम्पित किया जाना बताया गया है, जो श्वेताम्बरमान्यता है। (१/१/७/१)।

५. दिगम्बरीय उत्तरपुराण (४८/१३७) में सगरपुत्रों का मोक्षगमन वर्णित है, पर पउमचरियं (५/१०/२-३) में विमलसूरि तथा पद्मपुराण में रविषेण के अनुसार भीम और भगीरथ, दो पुत्रों को छोड़कर शेष का नागकुमार देव के कोप से भस्म होना वर्णित है।

इन वर्णनों के आधार पर स्वयंभू यापनीय सिद्ध होते हैं। (या.औ.उ.सा./पृ. १५६-१५७)।

---

१९. "देवेसु मणाहारो।" प्राकृत-भावसंग्रह / गाथा ११२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ये मान्यताएँ दिगम्बरपरम्परा के विरुद्ध अवश्य हैं, किन्तु जो दिगम्बरपरम्परा के विरुद्ध हैं, वे यापनीयों की मान्यताएँ हैं, यह तो तभी कहा जा सकता है, जब वे ऐसे ग्रन्थ में उपलब्ध हो, जिसमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि यापनीय-मान्यताओं के विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन न हो। किन्तु पउमचरिउ में तो ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, अतः जब वह यापनीयपरम्परा का ही नहीं है, तब उसमें उपलब्ध उक्त मान्यताएँ यापनीयों की कैसे हो सकती हैं? और अगर हों, तो भी वह यापनीयग्रन्थ नहीं हो सकता, क्योंकि यापनीयमत के जो स्त्रीमुक्ति आदि आधारभूत सिद्धान्त हैं, उनका उसमें निषेध किया गया है। निषेध की उपपत्ति पउमचरिउ के दिगम्बरग्रन्थ होने पर ही संभव है, अन्यथा नहीं।

इस स्थिति में उपर्युक्त मान्यताएँ पउमचरिउ को न तो यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने में समर्थ हैं, न उसके दिगम्बरग्रन्थ होने को, असिद्ध करने में। उन मान्यताओं की उपपत्ति केवल इस बात को स्वीकार करने से हो सकती है कि हरिवंशपुराणकार जिनसेन के समान स्वयम्भू ने भी देशकाल के औचित्य को देखते हुए जैनेतर मान्यताओं को अपने ग्रन्थ में समाविष्ट किया है। कुछ मान्यताएँ स्वबुद्धिकल्पित भी हो सकती हैं। इस प्रकार अन्यथा उपपन्न होने से उन मान्यताओं का उल्लेख पउमचरिउ के कर्त्ता स्वयम्भू को यापनीय ग्रन्थकार सिद्ध करने में समर्थ नहीं है।

ऊपर निर्दिष्ट प्रमाणों और युक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि स्वयंभूकृत 'पउमचरिउ' को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये गये सभी हेतु हेत्वाभास हैं। 'पउमचरिउ' में यापनीयग्रन्थ-साधक हेतुओं की अनुपलब्धि एवं दिगम्बरग्रन्थ-साधक हेतुओं की उपलब्धि से सिद्ध है कि वह दिगम्बरग्रन्थ है, यापनीयग्रन्थ नहीं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

त्रयोविंश अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

त्रयोविंश अध्याय

बृहत्कथाकोश

'यापनीय और उनका साहित्य' ग्रन्थ की लेखिका श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया एवं 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक डॉ० सागरमल जी ने हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश (९३१ ई०) को भी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ माना है, क्योंकि उनके अनुसार उसमें स्त्रीमुक्ति और गृहस्थमुक्ति का प्रतिपादन है।

लगता है कि इन दोनों ग्रन्थलेखक-लेखिका ने या तो बृहत्कथाकोश को आद्योपान्त पढ़ा नहीं है या ग्रन्थगत उल्लेखों पर जानबूझकर मनमाने अर्थ और मत आरोपित कर उसे बलात् यापनीयसम्प्रदाय का ग्रन्थ सिद्ध करने का निरर्थक प्रयत्न किया है, क्योंकि उसमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और अन्यलिंगिमुक्ति का स्पष्टतः निषेध किया गया है, जो यापनीयमत के सिद्धान्त हैं। उनका निषेध किये जाने से सिद्ध है कि वह यापनीयमत का नहीं, अपितु दिगम्बरमत का ग्रन्थ है और उसके कर्त्ता हरिषेण दिगम्बराचार्य हैं। इसका स्पष्टीकरण उक्त लेखक-लेखिका द्वारा प्रस्तुत यापनीय-पक्षधर हेतुओं का निरसन करते हुए नीचे किया जा रहा है। हेतु को **यापनीयपक्ष** शीर्षक के नीचे दर्शाया जा रहा है और निरसन **दिगम्बरपक्ष** शीर्षक के नीचे किया जा रहा है।

बृहत्कथाकोश के दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण

१

स्त्रीमुक्ति का प्रतिपादन नहीं, अपितु निषेध

यापनीयपक्ष

उक्त लेखक-लेखिका ने अपने ग्रन्थों (जै.ध.या.स./पृ.१६७, या.औ.उ.सा./पृ.१५१) में बृहत्कथाकोश-गत **अशोकरोहिणी कथानक** (क्र.५७) के निम्नलिखित श्लोक को उद्धृत करते हुए कहा है कि इसमें स्त्रीमुक्ति का प्रतिपादन किया गया है—

एवं करोति यो भक्त्या नरो रामा महीतले।
लभते केवलज्ञानं मोक्षं च क्रमतः स्वयम्॥ २३५॥

अनुवाद—"इस विधि से जो पुरुष या स्त्री भक्तिपूर्वक रोहिणीव्रत (रोहिणी नक्षत्र में उपवास) का अनुष्ठान करती है, उसे क्रम से केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्त होता है।"

दिगम्बरपक्ष

यह बात **अशोकरोहिणीकथानक** में **अमितास्रव मुनि** द्वारा **पूतिगन्धा** (अत्यन्त दुर्गन्धित शरीरवाली) नाम की स्त्री को अपने पूर्वकृत पाप से मुक्त होने के लिए दिये गये उपदेशक्रम में कही गई है। पूतिगन्धा ने पूर्वभव में क्रोध में आकर एक मुनि को कड़वी तुम्बी का आहार कराया था, जिससे उनकी मृत्यु हो गयी थी। इस पाप के फल से वह पहले कुष्ठग्रस्त हुई, फिर नरक गई। वहाँ से निकलकर अनेकभवों में कुक्करी, शूकरी, गर्दभी, मूषिका आदि के रूप में जन्म लेती हुई इस भव में अत्यन्त दुर्गन्धमय शरीवाली स्त्री होती है। वह मुनिवर से पूछती है कि इस पाप से मुक्ति का उपाय क्या है? तब मुनिश्री उपाय बतलाते हैं—

यदि त्वमिच्छसि स्पष्टं सर्वपापविमोचनम्।
रोगशोकपरित्यक्तां सुरवल्लभतामपि॥ २१९॥

ततो रोहिणीनक्षत्रे चोपवासं कुरु द्रुतम्।
येन भूयोऽपि दुःखानि न पश्यसि कदाचन॥ २२०॥

अनुवाद—"यदि तुम सचमुच में सब पापों से मुक्त होना चाहती हो, यहाँ तक कि रोग, शोक से रहित स्वर्ग की देवी बनना चाहती हो, तो रोहिणी नक्षत्र में शीघ्र ही उपवास करो। उससे तुम्हें कभी भी कोई दुःख नहीं होगा।"

इसके बाद मुनि **रोहिणीव्रत** के उपवास की विधि बतलाते हैं और उसकी समाप्ति पर वासुपूज्य भगवान् एवं रोहिणी पुस्तक की पूजा तथा चतुर्विध संघ को आहार, ओषधि और वस्त्रादि का यथायोग्य दान (पात्रानुसार दान) का उपदेश देते हैं। तत्पश्चात् कहते हैं कि जो पुरुष या स्त्री कर्मक्षय के उद्देश्य से (स्वर्गादिसुख के निदान से नहीं) ऐसा करते हैं, उन्हें क्रमशः केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति होती है—

वासुपूज्यजिनेन्द्रस्य रोहिणीपुस्तकस्य च।
पूजा विधीयते भक्त्या कर्मक्षयनिमित्ततः॥ २३३॥

पश्चादाहारदानं च भेषजं वसनादिकम्।
चतुर्विधस्य सङ्घस्य यथायोग्यं विधीयते॥ २३४॥

एवं करोति यो भक्त्या नरो रामा महीतले।
लभते केवलज्ञानं मोक्षं च क्रमतः स्वयम्॥ २३५॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यहाँ **क्रमतः** (क्रम से अर्थात् परम्परया) शब्द का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। यह स्त्री की तद्भवमुक्ति का निषेधक है। जैन कर्मसिद्धान्त और अध्यात्मशास्त्र का प्रत्येक अभ्यासी अच्छी तरह जानता है कि उपर्युक्त क्रियाएँ शुभोपयोग हैं और असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत-गुणस्थान तक होनेवाले शुभोपयोग से केवल दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों एवं अनन्तानुबन्धी कषाय की चार प्रकृतियों का क्षय होता है। शेष १३८ (चरमशरीरी जीव के नारकायु, तिर्यंचायु और देवायु का सत्त्व नहीं होता) प्रकृतियों का क्षय शुभोपयोग से नहीं होता। उनका यथायोग्य क्षय क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ छद्मस्थ मुनि के एकाग्रचिन्ता-निरोधरूप प्रथम एवं द्वितीय शुक्लध्यान-नामक शुद्धोपयोग से तथा अयोगिकेवली के योगनिरोध से होता है। अयोगकेवली के योगनिरोध को ही चतुर्थ शुक्लध्यान कहा गया है—

अंतोमुहुत्तमद्धं चिंतावत्थाणमेयवत्थुम्मि।
छदुमत्थाणं ज्झाणं जोगणिरोधो जिणाणं तु॥

सयोगकेवली और अयोगकेवली ध्रुवोपयोग-परिणत होते हैं, अतः उनके अन्तर्मुहुर्त्त तक एकाग्रचिन्तानिरोध-स्वभाववाला ध्यान-परिणामरूप शुद्धोपयोग संभव नहीं है, जैसा कि जयधवलाकार ने कहा है—"**पूर्ववदत्रापि ध्यानोपचारः प्रवर्तनीयः, परमार्थवृत्त्या एकाग्रचिन्तानिरोध-लक्षणस्य ध्यानपरिणामस्य ध्रुवोपयोगपरिणते केवलिन्यनुपपत्तेः।**" (जयधवला / क.पा./भा.१६/अनुच्छेद ३९५/पृ.१८४)। शुभोपयोग इन १३८ कर्मप्रकृतियों के क्षय में असमर्थ है। इसके विपरीत उससे तीसरे गुणस्थान को छोड़कर पहले से सातवें गुणस्थान तक देवायु का बन्ध होता है (ष.ख./पु.८/३, ३१-३२/पृ.६४)। इस प्रकार वह प्रत्यक्षरूप से मोक्ष के विपरीत है। इसीलिए अमितास्रव मुनि पूतिगन्धा से कहते हैं कि इस रोहिणीव्रत से तुम स्वर्ग की देवी भी बन सकती हो।

किन्तु इस शुभोपयोग में इतनी विशेषता होती है कि यदि यह कर्मक्षय के लक्ष्य से किया जाय, भोगों की आकांक्षा से नहीं, तो इससे उस उत्कृष्ट पुण्य का बन्ध होता है, जिससे पहले स्वर्गसुखप्राप्त होता है, पश्चात् मनुष्यपर्याय, पुरुषशरीर आदि परमसमाधि के योग्य सामग्री प्राप्त होती है, जिसके आश्रय से मनुष्य दिगम्बर-मुनिदीक्षा ग्रहणकर गुणस्थानक्रम से शुक्लध्यान के द्वारा कर्मक्षय करता हुआ मोक्ष प्राप्त कर सकता है।[१] श्लोक में प्रयुक्त **क्रमतः** शब्द इसी क्रम या परम्परा को सूचित करता है।

---

१. क— "निर्विकल्पसमाधिरूपशुद्धोपयोगशक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूपसरागचारित्रेण परिणमति तदा पूर्वमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतमाकुलत्वोत्पादकं स्वर्गसुखं

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसी क्रम के अनुसार पूतिगन्धा को पहले रोहिणीव्रत एवं श्राविकाव्रत के फल-स्वरूप अच्युतस्वर्ग के देव की महादेवी और उसके बाद राजा अशोक की रोहिणी नामक महारानी होते हुए बतलाया गया है। तत्पश्चात् आर्यिकादीक्षा लेकर दुष्कर तप एवं सल्लेखनाविधि से देहत्याग करने पर वह देवगति एवं पुरुषवेद का बन्ध कर अच्युतस्वर्ग में दिव्यबुन्दीधर देव होती है। इस तरह वह सम्यग्दृष्टि देव की उस भूमिका में आ जाती है, जहाँ से च्युत होकर उसका मनुष्यगति में पुरुष होना अनिवार्य है। इससे उसके लिए दैगम्बरी दीक्षा लेकर मुक्ति प्राप्त करने का द्वार खुल जाता है। इस कथा का वर्णन 'अशोकरोहिणीकथानक' के निम्नलिखित श्लोकों में किया गया है—

पूर्वोक्तपूतिगन्धापि श्रावकव्रतभूषिता।
उपोष्य रोहिणीं भद्रा चक्रे कालं समाधिना॥ ४५९॥

पल्योपमानि भुञ्जाना सुखं पञ्चदशानि सा।
अच्युतस्यैव देवस्य महादेवी बभूव च॥ ४६०॥

पूतिगन्धाचरी देवी या तवासीन्मनः प्रिया।
सा स्वर्गाद्गलिता भूमिमवतीर्णायुषः क्षये॥ ४६५॥

श्रीमदङ्गाख्यदेशस्थ-चम्पायां पुरि रूपिणी।
मघोनस्तनया जाता श्रीमत्यां रोहिणी नृप॥ ४६६॥

रोहिणी च महादेवी हित्वा सर्वपरिग्रहम्।
वासुपूज्यं जिनं नत्वा सुमत्यन्ते तपोऽग्रहीत्॥ ५८२॥

नानातपो विधायैषा सामान्यस्त्रीसु दुष्करम्।
सल्लेखनविधिं चक्रे रोहिणी कर्महानये॥ ५८३॥

ततः स्त्रीत्वं समादाय कृत्वा कालं समाधिना।
कल्पेऽच्युते बभूवासौ दिव्यबुन्दीधरः सुरः॥ ५८४॥

लभते। **पश्चात्** परमसमाधिसामग्रीसद्भावे मोक्षं च लभते।'' तात्पर्यवृत्ति / प्रवचनसार १/ ११/ पृ. १२।

ख— ''तीर्थङ्करादिपुराणजीवादिनवपदार्थप्रतिपादकागमपरिज्ञानसहितस्य तद्भक्तियुक्तस्य च यद्यपि तत्काले पुण्यास्रवपरिणामेन मोक्षो नास्ति तथापि तदाधारेण **कालान्तरे** निरास्रव-शुद्धोपयोगपरिणामसामग्रीप्रस्तावे भवति। तात्पर्यवृत्ति/ पंचास्तिकाय/गा. १५४/ पृ. २२३।

ग— ''तेन कारणेन स तु भेदज्ञानी स्वकीयगुणस्थानानुसारेण **परम्परया** मुक्तिकारणभूतेन तीर्थङ्करनामकर्म प्रकृत्यादिपुद्गलरूपेण विविधपुण्यकर्मणा बध्यते।'' तात्पर्यवृत्ति / समय-सार / गा. १७२/ पृ. २३९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि उक्त ग्रन्थों के लेखक-लेखिका द्वारा उद्धृत श्लोक में स्त्री की तद्भवमुक्ति का कथन नहीं है, अपितु क्रमशः या परम्परया (पुरुषशरीर धारण कर दैगम्बरी दीक्षा द्वारा) मुक्त होने का कथन है।

इसी क्रम से **रुक्मिणी** के भी मोक्ष पाने का वर्णन बृहत्कथाकोश के **लक्ष्मीमतीकथानक** (१०८) में किया गया है। यथा—

अथ सा रुक्मिणी नत्वा सर्वसत्त्वहितं गुरुम्।
संयमश्री-समीपे च प्रवव्राज मनस्विनी॥ १२४॥

बद्ध्वा तीर्थङ्करं गोत्रं तपः शुद्धं विधाय च।
रुक्मिणी स्त्रीत्वमादाय जातो दिवि सुरो महान्॥ १२५॥

देवश्च्युत्वा भुवं प्राप्य तपः कृत्वाऽयमुत्तरम्।
निहत्याशेषकर्माणि मोक्षं यास्यति नीरजाः॥ १२६॥

अनुवाद—"रुक्मिणी ने समस्त प्राणियों के हितकारी गुरु को नमस्कार कर संयमश्री आर्यिका से दीक्षा ग्रहण की। फिर तीर्थंकरगोत्र का बन्ध कर और शुद्ध तप की साधना कर स्वर्ग में महान् देव हुई। वह देव भविष्य में देवपर्याय से च्युत होकर (मनुष्यपर्याय में आयेगा और) तप के द्वारा अशेष कर्मों का विनाश कर मोक्ष प्राप्त करेगा।"

इस प्रकार सम्पूर्ण बृहत्कथाकोश में स्त्रीपर्याय से पुरुषपर्याय प्राप्त करके ही मोक्ष होने का कथन है, किसी भी स्त्री की तद्भवमुक्ति का कथन नहीं है। इससे स्पष्ट है कि यापनीयपक्षधर ग्रन्थद्वय के लेखक-लेखिका ने **क्रमतः** शब्द की अनदेखी कर और पूतिगन्धा (रोहिणी) तथा रुक्मिणी के स्त्रीपर्याय को छोड़कर पुरुषपर्याय पाने के कथनों को ताक पर रखकर हल्ला मचाया है कि बृहत्कथाकोश में स्त्रीमुक्ति का प्रतिपादन है, इसलिए वह यापनीयग्रन्थ है। वस्तुतः उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि वह यापनीयग्रन्थ नहीं हैं।

यापनीयपक्ष

उक्त ग्रन्थों के लेखक-लेखिका ने दूसरा हेतु यह प्रस्तुत किया है कि बृहत्कथाकोश में रुक्मिणी को तीर्थंकरगोत्र का बन्ध होना बतलाया गया है (देखिए ऊपर '**बद्ध्वा तीर्थङ्करं गोत्रं**' श्लोक)। यह दिगम्बरमत के प्रतिकूल और श्वेताम्बर तथा यापनीय मतों के अनुकूल है। इससे सिद्ध है कि बृहत्कथाकोश यापनीयग्रन्थ है। (या.औ.उ.सा./पृ. १५१, जै.ध.या.स./पृ. १६८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दिगम्बरपक्ष

यह सत्य है कि स्त्री को तीर्थंकरनामकर्म के बन्ध का उल्लेख दिगम्बरमत के प्रतिकूल है, तथापि इससे बृहत्कथाकोश यापनीयग्रन्थ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि उसमें ऐसे अनेक सिद्धान्त और तथ्य उपलब्ध होते हैं, जो यापनीयमत के विरुद्ध हैं। यथा—

१. रुक्मिणी को तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध निरूपित करते हुए भी, उसकी मुक्ति स्त्रीपर्याय से न बतलाकर पुरुषपर्याय से बतलायी है और भविष्य में उसके तीर्थंकर होने का भी कथन नहीं किया गया है। तथा जैसा कि ऊपर कहा गया है, सम्पूर्ण बृहत्कथाकोश में किसी भी स्त्री की तद्भवमुक्ति का कथन नहीं है। सभी आर्यिकाओं के देवपर्याय प्राप्त करने का अथवा देवपर्याय प्राप्त करने के अनन्तर वहाँ से च्युत होने पर मनुष्यभव में पुरुषशरीर से मोक्षप्राप्ति का कथन है,[२] क्योंकि आर्यिकापद से देवपर्याय प्राप्त करनेवाला जीव सम्यग्दृष्टि होने के कारण स्त्रीशरीर प्राप्त नहीं कर सकता।

२. यापनीयमत में मुनि के अचेल और सचेल दो लिंग माने गये हैं, किन्तु सम्पूर्ण बृहत्कथाकोश में एकमात्र दिगम्बरत्व अथवा नग्नता को ही मुनिलिंग कहा गया है। एक भी श्लोक ऐसा नहीं है, जिसमें वस्त्रधारी को मुनि, निर्ग्रन्थ या श्रमण शब्द से अभिहित किया गया हो।[३]

३. गृहत्यागी, कौपीनमात्रधारी ग्यारह श्रावकप्रतिमाओं के पालक पुरुष को **क्षुल्लक** नाम दिया गया है और उसके प्रति विनय प्रकट करने के लिए मुनिवत् 'नमोऽस्तु' वाक्य का प्रयोग न कर **इच्छामि** शब्द का प्रयोग किया गया है, तथा कहा गया है

---

२. देखिये, अशोकरोहिणीकथानक का पूर्वोद्धृत श्लोक ५८४, लक्ष्मीमतीकथानक के पूर्वोद्धृत श्लोक १२५-१२६ तथा ४६वें 'असत्यभाषणकथानक' का निम्नलिखित श्लोक–

विमलादिकमत्यन्ताद्यार्यिकाः शुद्धचेतसः।
नानातपो विधायोच्चैर्भावयोग्यं दिवं ययुः॥ १८८॥

इस श्लोक में विमला आदि आर्यिकाओं (आर्यिकाः) को स्वर्गगामी कहा गया है, जबकि उन्हीं के साथ मुनिदीक्षा ग्रहण करनेवाले राजा धनद को मोक्ष की प्राप्ति बतलायी गयी है—

ततोऽनेकसमाः कृत्वा नानाविधतपांसि तु।
धनदः स मुनिर्विद्वानाध्यासितपरीषहः॥ १८६॥
दिव्यनाम-पुरी-पार्श्व-स्थित-गोवर्ज-पर्वते।
जगाम निर्वृतिं वीरो गिरीन्द्रस्थितमानसः॥ १८७॥

३. देखिये, आगे शीर्षक—'सवस्त्रमुक्तिनिषेध के अन्य प्रमाण।'

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कि जब वह क्षुल्लक पद को छोड़कर दिगम्बरमुनि-दीक्षा ग्रहण करता है, तभी मुक्ति का पात्र बनता है। व्रतधारी स्त्रियों में आर्यिकाओं के अतिरिक्त क्षुल्लिका का पद भी बतलाया गया है। ये विशेषताएँ केवल दिगम्बरमत में मिलती हैं, यापनीय और श्वेताम्बर मतों में नहीं।[४]

४. बृहत्कथाकोश में दिगम्बरवेश को ही मुक्ति का मार्ग बतलाया गया है, वस्त्रधारण करने को मुक्ति में बाधक कहा गया है।[५]

५. उक्त ग्रन्थ के **भद्रबाहुकथानक** में दिगम्बरमत को ही तीर्थंकरप्रणीत प्ररूपित किया गया है, श्वेताम्बरमत को द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के परिणामस्वरूप शिथिलाचार से उत्पन्न बतलाया गया है तथा यापनीयसम्प्रदाय को उस शिथिलाचारजनित श्वेताम्बर-सम्प्रदाय से उद्भूत कहा गया है।[६]

६. बृहत्कथाकोशकार हरिषेण उसी **पुन्नाटसंघ** के थे,[७] जिसके हरिवंशपुराणकार जिनसेन थे। **जिनसेन** दिगम्बर थे, अतः **हरिषेण** भी दिगम्बर थे।

७. बृहत्कथाकोश में 'कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा' के कर्त्ता **स्वामिकार्तिकेय** (क्र.१३६) और षट्खण्डागम के उपदेष्टा आचार्य **धरसेन** एवं कर्त्ता **पुष्पदन्त-भूतबलि** (क्र.२६) के कथानक वर्णित हैं। ये सब दिगम्बर थे।

८. हरिषेण ने दिगम्बरग्रन्थ 'भगवती-आराधना' से अनेक कथाओं के बीज लेकर बृहत्कथाकोश के बहुत से कथानकों की रचना की है।[८]

ये सिद्धान्त और तथ्य इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं कि बृहत्कथाकोश यापनीयग्रन्थ या श्वेताम्बरग्रन्थ नहीं है, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है। इसलिए उसमें जो स्त्री को तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध बतलाया गया है, वह अन्यथानुपपत्ति से इस निर्णय पर पहुँचाता है कि या तो वह प्रक्षिप्त है अथवा सिद्धान्तग्रन्थों के गहन अनुशीलन के अभाव में हरिषेण ने अनभिज्ञतावश वैसा लिख दिया है। उनकी ऐसी अनभिज्ञता अन्यत्र भी प्रकट हुई है। यथा, उन्होंने लिखा है—"**रुक्मिणी स्त्रीत्वमादाय जातो दिवि सुरो महान्**" (१०८/

---

४. देखिये, आगे शीर्षक—'गृहस्थमुक्तिनिषेध' तथा 'सवस्त्रमुक्तिनिषेध के अन्य प्रमाण'/अनुच्छेद क्र. ७।

५. देखिये, आगे शीर्षक—'सवस्त्रमुक्तिनिषेध के अन्य प्रमाण'/अनुच्छेद क्र.६।

६. देखिये, आगे शीर्षक ७ 'भद्रबाहुकथानक में कोई भी अंश प्रक्षिप्त नहीं।'

७. "पुन्नाटसङ्घाम्बरसन्निवासी ---।" बृहत्कथाकोश/प्रशस्ति/श्लोक/३/पृ. ३५५।

८. आराधनोद्वृतः पथ्यो भव्यानां भावितात्मनाम्।
हरिषेणकृतो भाति कथाकोशो महीतले॥ ८ वही/प्रशस्ति।

१२५) अर्थात् आर्यिका रुक्मिणी स्त्रीत्व को लेकर स्वर्ग में महान् देव हुईं। यहाँ स्त्रीत्व को स्वर्ग में ले जाने का क्या तात्पर्य है, यह बुद्धिगम्य नहीं है। यदि स्त्रीत्व से तात्पर्य स्त्रीवेदनोकषाय और स्त्रीशरीरांगोपगनामकर्म (द्रव्यस्त्रीवेद) से है, तो उपर्युक्त कथन समीचीन नहीं है, क्योंकि इन दोनों वेदों (भावस्त्रीवेद और द्रव्यस्त्रीवेद) का उदय तो स्त्रीपर्याय की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है। तथा परभविक देवायु का बन्ध करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव के साथ पुंवेदनोकषायकर्म तथा पुरुषशरीरांगोपांग-नामकर्म नियम से बँधते हैं। और यदि सम्यग्दर्शन होने के पूर्व परभव-सम्बन्धी स्त्रीवेदनोकषाय-कर्म या नपुंसकवेदनोकषाय-कर्म तथा स्त्रीशरीरांगोपांगनामकर्म या नपुंसकशरीरांगोपांग-नामकर्म बँध गये हैं, तो इनमें से ये दोनों नाम कर्म पुरुषशरीरांगोपांग-नामकर्म में परिवर्तित हो जाते हैं। इस तथ्य का उल्लेख डॉ० पं० पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने निम्नलिखित शब्दों में किया है—

"सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीपर्याय में उत्पन्न नहीं होता है। यदि उसे सम्यग्दर्शन के पूर्व स्त्रीवेद का बन्ध पड़ गया है, तो वह पुरुषवेद के रूप में परिवर्तित हो जाता है। तिर्यंचों और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि जीवों में पूर्वबद्ध नपुंसकवेद भी पुरुषवेद के रूप में परिवर्तित हो जाता है।" (रत्नकरण्डश्रावकाचार/विशेषार्थ १/३५/पृ.७६)।

यहाँ स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद से द्रव्यवेद (शरीरांगोपांग-नामकर्म) विवक्षित है, भाववेद नहीं, क्योंकि भाववेद अर्थात् पुंवेदनोकषाय, स्त्रीवेदनोकषाय तथा नपुंसक-वेदनोकषाय एक-दूसरे में परिवर्तित नहीं होते।[९] जीव में इन तीनों का पृथक्-पृथक् सत्त्व नौवें गुणस्थान के सवेदभाग पर्यन्त रहता है और उसके आगे ही उनका क्रमशः क्षय होता है। (स.सि./१०/२)। किन्तु औदारिक-शरीरसम्बन्धी पुरुषशरीरांगोपांग, स्त्रीशरीरांगोपांग एवं नपुंसकशरीरांगोपांग, इन तीन नामकर्मों का सत्व एक साथ नहीं होता, क्योंकि सयोगकेवली-गुणस्थान में औदारिकशरीर-सम्बन्धी केवल औदारिकशरीरांगोपांग नामक एक ही प्रकृति का सत्त्व बतलाया गया है, जो केवली के पुरुष होने से पुरुषशरीरागोपांगरूप होती है। (स.सि./१०/२) इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई जीव मिथ्यादृष्टि-अवस्था में स्त्रीशरीरांगोपांग अथवा नपुंसकशरीरांगोपांग नामकर्म का बन्ध करता है, तो सम्यग्दर्शन होने पर वह पुरुषशरीरांगोपांग नामकर्म में परिवर्तित हो जाता है और वह पुंवेदनोकषायकर्म तथा पुरुषशरीरांगोपांग-नामकर्म का ही बन्ध करता है। इससे यह निर्णय भी होता है कि मिथ्यादृष्टि जीव यदि पहले स्त्रीशरीरांगोपांग-नामकर्म

९. यह अवश्य है कि जब कोई एक भाववेद उदय में आता है, तब अन्य दो भाववेद एक समय पूर्व स्तिबुकसंक्रमण द्वारा उदय को प्राप्त भाववेद के रूप में संक्रमित होकर उदय में आते हैं। (देखिये, पं. रतनचन्द्र जैन मुख्तार : व्यक्तित्व और कृतित्व/भाग १/पृ.४५५)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

या नपुंसकशरीरागोपांग-नामकर्म बाँधता है और उसके बाद विशुद्धपरिणामवश पुंवेदनोकषायकर्म एवं पुरुषशरीरांगोपांग-नामकर्म का बन्ध करता है, तो पूर्वबद्ध स्त्रीशरीरांगोपांग-नामकर्म या नपुंसकशरीरांगोपांग-नामकर्म पुरुषशरीरांगोपांग-नामकर्म में बदल जाता है। मायाचार आदि संक्लेशपरिणाम की विशेषता से इसके विपरीत होना भी संभव है।

इसी प्रकार यदि कोई जीव मिथ्यात्वदशा में देवगति के साथ स्त्रीवेदनोकषायकर्म एवं वैक्रियिक-स्त्रीशरीरांगोपांग-नामकर्म का बन्ध करता है, तो सम्यक्त्व प्राप्त करने पर उसे पुंवेदनोकषायकर्म एवं वैक्रियिक-पुरुषशरीरांगोपांगनामकर्म का ही बन्ध होता है तथा उसका पूर्वबद्ध वैक्रियिक-स्त्रीशरीरांगोपांग-नामकर्म वैक्रियिक-पुरुषशरीरांगोपांग-नामकर्म का रूप धारण कर लेता है। तथा यदि कोई मिथ्यादृष्टि जीव नरकगति के साथ नपुंसकवेदनोकषायकर्म एवं वैक्रियिक-शरीरांगोपांग-नामकर्म बाँधता है, तो उसका वह शरीरांगोपांगनामकर्म नपुंसकशरीरांगोपांगरूप होता है।

निष्कर्ष यह कि जो जीव मिथ्यात्वदशा में स्त्रीवेदनोकषायकर्म एवं स्त्रीशरीरांगोपांगनामकर्म बाँध लेता है, वह सम्यग्दर्शन होने पर पुंवेदनोकषायकर्म एवं पुरुषशरीरांगोपांग-नामकर्म का बन्ध करने लगता है, और उसका पूर्वबद्ध स्त्रीवेदनोकषायकर्म तो ज्यों का त्यों सत्ता में रहता है, किन्तु स्त्रीशरीरांगोपांग-नामकर्म पुरुषशरीरांगोपांग-नामकर्म में परिवर्तित हो जाता है। अतः जब वह देवायु का बन्ध कर स्वर्ग में जाता है, तो भावपुरुषत्व और द्रव्यपुरुषत्व को ही लेकर जाता है। वहाँ उसके पूर्वबद्ध भावस्त्रीवेद (स्त्रीवेदनोकषायकर्म) और भावनपुंसकवेद (नपुंसकवेद-नोकषायकर्म) भी उदय को प्राप्त भावपुरुषवेद के रूप में स्तिबुकसंक्रमण कर उदय में आने लगते हैं। अतः बृहत्कथाकोशकार हरिषेण का यह कथन आगमसम्मत नहीं है कि 'रुक्मिणी स्त्रीत्व को साथ में लेकर स्वर्ग में महान् देव हुई' अथवा 'रोहिणी स्त्रीत्व को लेकर अच्युतकल्प में दिव्यबुन्दीधर देव हुई।' (५७ / ५८४)। जब स्त्रीत्व शेष ही नहीं रहा, तब उसे लेकर रुक्मिणी या रोहिणी स्वर्ग में कैसे जा सकती है?

हरिषेण ने **बृहत्कथाकोश** में व्याकरणसम्बन्धी भी अनेक अनियमितताएँ की हैं, जिन्हें डॉ० एन० एन० उपाध्ये ने सिंघी जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित बृहत्कथाकोश की प्रस्तावना (पृ. ९४-११२) में उद्घाटित किया है। इन उदाहरणों को देखते हुए यह आश्चर्यजनक प्रतीत नहीं होता कि दिगम्बर हरिषेण ने स्त्री को तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का कथन सैद्धान्तिक अनभिज्ञतावश किया है।

यापनीयपक्ष

यापनीयपक्षधर विद्वान् ने तीसरा हेतु यह प्रस्तुत किया है कि बृहत्कथाकोश के **अशोकरोहिणी कथानक** में रोहिणी महारानी के द्वारा सर्वपरिग्रहत्याग किये जाने

का उल्लेख है।[१०] दिगम्बरमत के अनुसार स्त्री के लिए सर्वपरिग्रह का त्याग संभव नहीं है, क्योंकि उसमें वस्त्र भी परिग्रह माना गया है। किन्तु श्वेताम्बर और यापनीय मतों में स्त्रीमुक्ति मान्य होने से वस्त्रधारण करते हुए भी सर्वपरिग्रहत्याग का कथन युक्तिसंगत हो जाता है। अतः यह यापनीयग्रन्थ है। (जै.ध.या.स./पृ. १६८)।

दिगम्बरपक्ष

पूर्व में अनेक स्थानों पर स्पष्ट किया जा चुका है कि दिगम्बरमत में आर्यिका को उपचार से महाव्रती कहा गया है, इसलिए सर्वपरिग्रहत्याग का कथन भी औपचारिक ही है। दिगम्बरग्रन्थ **भगवती-आराधना** की **'इत्थीवि य जं लिंगं दिट्ठं'** इत्यादि गाथा (८०) और उसकी विजयोदयाटीका में आर्यिकाओं के एकसाड़ीरूप अल्पपरिग्रहात्मक लिंग को सर्वपरिग्रहत्यागरूप उत्सर्गलिंग कहा गया है। इसकी चर्चा 'भगवती-आराधना' नामक त्रयोदश अध्याय में की जा चुकी है।[११] अतः रोहिणी महारानी के द्वारा सर्वपरिग्रह-त्याग किये जाने का उल्लेख दिगम्बरमत के सर्वथा अनुकूल है। इसलिए उक्त उल्लेख से बृहत्कथाकोश यापनीयग्रन्थ सिद्ध नहीं होता।

२

गृहस्थमुक्तिनिषेध

यापनीयपक्ष

यापनीयपक्षधर लेखक-लेखिका ने चौथा हेतु यह बतलाया है कि बृहत्कथाकोशगत **अशोकरोहिणीकथानक** (क्र.५७) के निम्नलिखित श्लोक में गृहस्थमुक्ति का कथन है, जो यापनीयमत का सिद्धान्त है—

अणुव्रतधरः कश्चिद् गुणशिक्षाव्रतान्वितः।
सिद्धिभक्तो व्रजेत्सिद्धिं मौनव्रतसमन्वितः॥ ५६७॥

अनुवाद—"कोई सिद्धिभक्त (सिद्धि चाहनेवाला) अणुव्रतादिधारी श्रावक भी यदि मौनव्रत की साधना करता है, तो वह सिद्धि को प्राप्त होता है।"

दिगम्बरपक्ष

१. उक्त लेखक-लेखिका ने यहाँ जो 'सिद्धि' का अर्थ 'मोक्ष' लिया है, वह बृहत्कथाकोशकार के अभिप्राय के अनुरूप नहीं है। उनके अनुसार तो अणुव्रतधारी

---

१०. रोहिणी च महादेवी हित्वा सर्वं परिग्रहम्।
वासुपूज्यं जिनं नत्वा सुमत्यन्ते तपोऽग्रहीत्॥ ५७/५८२॥

११. देखिये, अध्याय १३-भगवती-आराधना/ प्रकरण ३/शीर्षक ५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के विषय में **सिद्धि** का अर्थ इच्छित लौकिक पदार्थ की प्राप्ति है, न कि मोक्ष की प्राप्ति। मोक्ष की प्राप्ति तो उन्होंने जन्तुमात्र (प्राणिमात्र) के लिए जैनेन्द्री दीक्षा के द्वारा ही बतलाई है। उदाहरणार्थ, **अशोकरोहिणीकथानक** (क्र.५७) के निम्नलिखित पद्य दर्शनीय हैं—

कालं कृत्वा ततो जन्तुर्मौनव्रतविधानतः।
देवः कलस्वनः स्वर्गे जायते भोगसंयुतः॥ ५५६॥

ततस्तत्र सुखं भुक्त्वा भुवं प्राप्य विशुद्धधीः।
चक्रवर्त्यादिकान् भोगान् भूयो भुङ्क्ते स तत्फलात्॥ ५५७॥

भौमान् भोगान् पुनर्भुक्त्वा मनोऽभिलाषितांश्चिरम्।
दीक्षामादाय जैनेन्द्रीं सिद्धिं याति स नीरजाः॥ ५५८॥

अनुवाद—"जो प्राणी मौनव्रत का पालन करते हुए समय व्यतीत करता है, वह स्वर्ग में मधुर स्वर एवं भोग से संयुक्त देव होता है। वहाँ स्वर्गिक सुखों का आस्वादन कर भूमि पर आता है और चिरकाल तक चक्रवर्ती आदि के मनोऽभिलाषित भोगों को भोगता है। पश्चात् जैनेन्द्री (दैगम्बरी) दीक्षा ग्रहण कर कर्ममुक्त हो सिद्धि (मोक्ष) प्राप्त करता है।"

२. इसी **अशोकरोहिणीकथानक** (क्र.५७) में बतलाया गया है कि मौनव्रत के फलों का श्रवण करनेवाले राजा अशोक ने श्रावक होते हुए भी जैनेन्द्री (दैगम्बरी) दीक्षा ग्रहण की और उग्र तप के द्वारा कर्मों का विनाश कर निर्वाण प्राप्त किया। यथा—

वासुपूज्यं जिनं भक्त्या त्रिः परीत्य प्रणम्य च।
दीक्षां जग्राह जैनेन्द्रीं **तदन्तेऽशोकभूपतिः**॥ ५७९॥

उग्रं तपो विधायायं कालेन बहुना ततः।
क्षीणकर्मा जगामाशु निर्वाणं परमुत्तमम्॥ ५८१॥

३. ग्रन्थकार ने **यशोधर-चन्द्रमती कथानक** (क्र.७३) में भी वर्णन किया है कि दो राजकुमार सुदत्तमुनि से अपने पूर्वभव का वृतान्त सुनकर विरक्त हो जाते हैं और उनसे मुनिदीक्षा की याचना करते हैं। सुदत्तमुनि उनसे कहते हैं—"आप लोगों के अंग सुकुमार हैं। उन्हें परीषह सहने का अभ्यास नहीं है। इसलिए अभी आप मुनिव्रत का पालन नहीं कर पायेंगे। इस समय आप लोगों को क्षुल्लक-धर्म का पालन करना चाहिए, मुनिदीक्षा बाद में दूँगा।" देखिए—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

युवां सुकुमाराङ्गावनध्यासित-परीषहौ।
शक्नुथो न व्रतं जैनं ग्रहीतुं मुग्धचेतसौ॥ २३७॥

विधातुमधुना युक्तं धर्मं क्षुल्लकसेवितम्।
चरमं युवयोर्दास्ये धर्मं दैगम्बरं परम्॥ २३८॥

दोनों राजकुमार मुनिवर की आज्ञा स्वीकार कर लेते हैं। पहले वे क्षुल्लक बन जाते हैं, बाद में उन्हीं मुनिराज से मुनिदीक्षा ग्रहण करते हैं—

क्षुल्लकौ क्षौल्लकं धर्मं हित्वा वैराग्यसङ्गतौ।
तदा निजगुरोः पार्श्वे मुनिदीक्षामुपागतौ॥ २९९॥

४. ग्रन्थकार ने बृहत्कथाकोश के **भद्रबाहुकथानक** (क्र.१३१) में श्वेताम्बर स्थविरकल्प (सचेललिंग) को शिथिलाचारी अर्धफालक साधुओं के द्वारा कल्पित बतलाते हुए वस्त्रधारण को मुक्ति में बाधक एवं नग्नत्व को मुक्ति का साधक सिद्ध किया है तथा अन्य कई स्थानों पर दैगम्बरी दीक्षा को ही सर्वकर्मविनाशक बतलाया है।[१२]

इन प्रमाणों से बृहत्कथाकोशकार का अभिप्राय स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें गृहस्थमुक्ति मान्य नहीं हैं। इसलिए अशोक-रोहिणी कथानक (क्र. ५७) के **अणुव्रतधरः कश्चिद्** श्लोक में जो सिद्धि चाहनेवाले गृहस्थ को मौनव्रत के द्वारा सिद्धि प्राप्त होने की बात कही गई है, वहाँ सिद्धि का अर्थ मोक्ष की प्राप्ति नहीं है, अपितु अनेक प्रकार के अभिलषित लौकिक पदार्थों की प्राप्ति है, यह **अशोक-रोहिणीकथानक** के निम्नलिखित श्लोकों से स्पष्ट है—

यशोव्याप्तसमस्ताशे मृदुमन्थरगामिनि।
वदामि तेऽधुना वत्से मौनव्रतफलं शृणु॥ ५५९॥

श्रवःसुखं मनोहारि लोकप्रत्ययकारणम्।
प्रमाणभूतमादेयं वचनं मौनतो नृणाम्॥ ५६०॥

देवशेषामिवाशेषामाज्ञामस्य प्रतीच्छति।
मस्तकेन जनो यस्मात्तन्मौनफलमुत्तमम्॥ ५६१॥

यच्च किञ्चित्कृतं तेन भयरोषविषापहम्।
तत्सममस्तं भवेल्लोके येन मौनं चिरं कृतम्॥ ५६२॥

मधुराक्षरसंयुक्तं मुखपद्मं मनोहरम्।
मौनेन जायते पुंसां नानार्थरुचिभाषणम्॥ ५६३॥

---

१२. देखिये, आगे 'सवस्त्रमुक्तिनिषेध के अन्य प्रमाण।'

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अपि दुःसाध्यतां प्राप्ताः सर्वलोकफलप्रदाः।
विद्याः सिध्यन्ति सर्वेषां चिरं मौनव्रतं कृतम्॥ ५६४॥

यदसाध्यं भवेत्कार्यमतिसंशयकारणम्।
तत्तस्य वाक्यतः सिद्धिमेति मौनफलाद् भुवि॥ ५६५॥

ध्यायन्ति मुनयो ध्यानं येन कर्मविनाशनम्।
मौनेन हि सदा तस्मान्मौनं सर्वार्थसाधनम्॥ ५६६॥

अणुव्रतधरः कश्चिद् गुणशिक्षाव्रतान्वितः।
सिद्धिभक्तो व्रजेत्सिद्धिं मौनव्रतसमन्वितः॥ ५६७॥

अनुवाद—(रूपकुम्भ मुनि वसुमती नामक कन्या को मौनव्रत के फल बतलाते हुए कहते हैं)—"हे समस्त दिशाओं में व्याप्त यशवाली, मृदुमन्थरगामिनी वत्से! मैं तुम्हें मौनव्रत के फल बतलाता हूँ, सुनो। मौन से मनुष्य को कर्णप्रिय, मनोहारी तथा लोगों के लिए विश्वसनीय, प्रमाणभूत वचनों की प्राप्ति होती है। मौन से मनुष्य को इन्द्र के समान ऐश्वर्य प्राप्त होता है, जिससे लोग उसकी आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए सदा तैयार रहते हैं। जो चिरकाल तक मौन की साधना करता है वह भय, रोष ओर विष का अपहार करने के लिए जो कुछ करता है वह सभी सफल होता है। मौन से मनुष्य का मुखकमल मधुरभाषी और मनोहर हो जाता है। दीर्घकाल तक मौनधारण करने से समस्त लौकिक फल प्रदान करनेवाली दुःसाध्य विद्याएँ भी सबको सिद्ध हो जाती हैं। अत्यन्त संशयास्पद (संकट के कारणभूत) असाध्य कार्य भी उसके वचन बोलने मात्र से सिद्ध हो जाते हैं। मुनि मौनव्रत का अवलम्बन करके ही कर्मविनाशक ध्यान ध्याते हैं, अतः मौन समस्त पदार्थों का साधन है। कोई अणुव्रत-गुणव्रत-शिक्षाव्रतधारी श्रावक यदि मौनव्रत का पालन करता है तो वह जिस सिद्धि का भक्त होता है (जिस वस्तु का अभिलाषी होता है), वह उसे प्राप्त हो जाती है।

इन वचनों के द्वारा आचार्य हरिषेण ने निम्नलिखित अर्थ प्रतिपादित किये हैं—

१. **मौनं सर्वार्थसाधनम्** (श्लोक ५६६) वाक्य के द्वारा स्पष्ट किया है कि मौन लौकिक फल और अलौकिकफल दोनों की प्राप्ति का साधन है। उससे इन्द्रपद, मनोहररूप, मधुर स्वर एवं वचन, दुःसाध्य विद्याएँ आदि लौकिक फलों की भी सिद्धि (उपलब्धि) होती है और कर्मविनाशक शुक्लध्यानरूप अलौकिक फल की भी।

२. **ध्यायन्ति मुनयो ध्यानं येन कर्मविनाशनम्** (श्लोक ५६६) इन वचनों से स्पष्ट किया है कि मौन से मुनियों को ही कर्मविनाशक शुक्लध्यान की सिद्धि होती

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है, श्रावकों का मौन कर्मविनाशक शुक्लध्यान का साधक नहीं है, अतः उन्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। इससे यह अर्थ प्रतिफलित होता है कि यतः श्रावकों को मौनव्रत से कर्मविनाशक शुक्लध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः उन्हें उससे इन्द्रपद, मनोहर-रूप, मधुरवचन, दुःसाध्य विद्याएँ इत्यादि लौकिक फलोपलब्धिरूप सिद्धि ही प्राप्त होती है। इसीलिए अशोकरोहिणी-कथानक (क्र. ५७) के **कालं कृत्वा ततो जन्तुर्मौनव्रत-विधानतः** इत्यादि पूर्वोद्धृत श्लोकों (५५६-५५८) में कहा गया है कि मौनव्रत के पालन से जीव स्वर्ग के भोग भोगता है और वहाँ से पृथ्वी पर आकर चक्रवर्ती आदि के भोग भोगने के बाद जैनेन्द्री (दैगम्बरी) दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करता है।

३. **कश्चिद् अणुव्रतधरः सिद्धिभक्तः सिद्धिं व्रजेत्** (श्लोक ५६७) इस वाक्य में **कश्चित्** शब्द के प्रयोग से स्पष्ट किया है कि लौकिक फलों की सिद्धि का भक्त (इच्छुक) कोई-कोई ही श्रावक होता है, सब नहीं। प्रायः सभी श्रावक मोक्षार्थी ही होते हैं, क्योंकि श्रावकधर्म मोक्षमार्गभूत मुनिधर्म के अभ्यासार्थ ही ग्रहण किया जाता है। यह बात हरिषेण ने पूर्वोद्धृत **यशोधर-चन्द्रमती-कथानक** में स्पष्ट कर दी है, जिसमें सुदत्त मुनि दो राजकुमारों को सुकुमार होने के कारण शुरू में मुनिदीक्षा नहीं देते, अपितु क्षुल्लकदीक्षा देते हैं और कुछ समय बाद समर्थ हो जाने पर मुनिदीक्षा प्रदान करते हैं। इस प्रकार यहाँ प्रयुक्त **कश्चित्** शब्द स्पष्ट करता है कि श्रावकों के प्रसंग में **सिद्धि** शब्द लौकिकफल-प्राप्ति का वाचक है, मोक्षप्राप्ति का नहीं।

यदि आचार्य हरिषेण गृहस्थ-अवस्था को मुक्ति का मार्ग मानते, तो वे यह न कहते कि **चक्रवर्ती आदि जैनेन्द्री (दैगम्बरी) दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।** और पूर्वोक्त दो राजकुमारों को न तो क्षुल्लकदीक्षा दिये जाने का वर्णन करते, न दैगम्बरी दीक्षा दिये जाने का। वे यह वर्णन करते कि "सुदत्तमुनि ने उन राजकुमारों से कहा कि तुम राजपरिवार के हो इसलिए तुम्हें न तो क्षुल्लकदीक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता है, न दैगम्बरीदीक्षा की, तुम गृहस्थ-अवस्था से ही मोक्ष प्राप्त कर सकते हो।" किन्तु हरिषेण ने ऐसा वर्णन नहीं किया, अपितु यह कहा है कि सुदत्तमुनि ने उन्हें पहले क्षुल्लकदीक्षा दी, उसके कुछ समय बाद क्षुल्लकदीक्षा का परित्याग कराकर दैगम्बरीदीक्षा प्रदान की। इससे सिद्ध हो जाता है कि हरिषेण गृहस्थमुक्ति के समर्थक नहीं हैं। अतः उनके द्वारा उक्त श्लोक में प्रयुक्त **सिद्धि** शब्द भी मोक्ष का वाचक नहीं है।

इस प्रकार यापनीयपक्षधर ग्रन्थलेखिका एवं लेखक ने बृहत्कथाकोश को यापनीय परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए जो यह हेतु बतलाया है कि '**अणुव्रतधरः कश्चिद्**' (क्र. ५७ / ५६७ / पृ.११९) इत्यादि श्लोक में **सिद्धि** शब्द मोक्ष का वाचक है, वह असत्य है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

सवस्त्रमुक्तिनिषेध

यापनीयपक्ष

'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने बृहत्कथाकोश में सवस्त्रमुक्ति का उल्लेख सिद्ध करने के लिए पृ.१६९ पर **अशोक-रोहिणी-कथानक** (क्र.५७) का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

ततः समस्तसङ्घस्य देहिभिर्भक्तितत्परैः।
देयं वस्त्रादिदानं च कर्मक्षयनिमित्ततः॥ ५५४॥

अनुवाद—"मौनव्रत सम्पन्न होने पर उसका उद्यापन करने के लिए कर्मक्षय के प्रयोजन से समस्त संघ को वस्त्रादि का दान करना चाहिए।

यापनीयपक्षधर ग्रन्थलेखक के कथन का अभिप्राय यह है कि समस्त संघ में मुनि भी आ जाते हैं, अतः मुनियों के लिए वस्त्रदान का उल्लेख होने से बृहत्कथाकोश में सवस्त्रमुक्ति अर्थात् स्थविरकल्प को मान्यता दी गई है।

दिगम्बरपक्ष

यहाँ भी मान्य ग्रन्थलेखक ने पूर्वापर कथनों पर ध्यान दिये बिना ही निर्णय घोषित कर दिया है।

इसके पूर्व इसी **अशोकरोहिणीकथानक** (क्र.५७) में कहा गया है कि रोहिणीव्रत की समाप्ति पर चतुर्विध संघ को यथायोग्य आहार, औषधि और वस्त्रादि का दान करना चाहिए—

पश्चादाहारदानं च भेषजं वसनादिकम्।
चतुर्विधस्य सङ्घस्य यथायोग्यं विधीयते॥ २३४॥

यहाँ **यथायोग्य** शब्द का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। 'यथायोग्य' का अर्थ है जिसके लिए जिस वस्तु का दान योग्य है, उसे उस वस्तु का दान करना। इससे सारी बात स्पष्ट हो जाती है। वह यह कि चूँकि मुनि नग्न होते हैं (**श्रमणा नग्नरूपिणः**)[१३] अतः उनके लिए केवल आहार, ओषधि, शास्त्र और अभय का दान देना चाहिए। तथा आर्यिका, श्रावक (क्षुल्लक-एलक) और श्राविका (क्षुल्लिका) वस्त्रधारण भी करते हैं, इसलिए उन्हें वस्त्रदान भी करना चाहिए। यह बात इसी **अशोकरोहिणीकथानक** में स्पष्ट की गई है—

---

१३. बृहत्कथाकोश / विष्णुकुमार-कथानक / क्र.११ / श्लोक ९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पञ्चमीपुस्तकं दिव्यं पञ्चपुस्तकसंयुतम्।
साधुभ्यो दीयते भक्त्या भेषजं च यथोचितम्॥ ५३५॥

आहारदानमादेयं भक्तितोद्व भेषजादिकम्।
वस्त्राणि चार्यिकादीनां दातव्यानि मुमुक्षिभिः॥ ५३६॥

इस कथन में स्पष्ट कर दिया गया है कि रोहिणीव्रत की समाप्ति पर साधुओं को पाँच पुस्तकों सहित पञ्चमी पुस्तक तथा भेषज एवं आहारदान देना चाहिए और आर्यिकाओं को वस्त्रदान भी करना चाहिए।

इससे सिद्ध है कि यापनीयपक्षी ग्रन्थ लेखक ने **यथायोग्य** शब्द और उसके उपर्युक्त स्पष्टीकरण पर ध्यान दिये बिना पूर्वोक्त श्लोक से जो यह निष्कर्ष निकाला है कि बृहत्कथाकोष में मुनियों के लिए वस्त्रदान का उल्लेख है, वह सर्वथा गलत है।

सवस्त्रमुक्तिनिषेध के अन्य प्रमाण

बृहत्कथाकोश में सवस्त्रमुक्तिनिषेध के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं। उन्हें नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. बृहत्कथाकोश में राजकुल और श्रेष्ठिकुल के पुरुषों को भी दैगम्बरी दीक्षा ही ग्रहण करते हुए वर्णित किया गया है। यापनीयमत के समान उच्चकुल के पुरुषों के लिए आपवादिक सवस्त्रलिंग का विधान उसमें कहीं भी नहीं मिलता। उदाहरणार्थ, नागपुर के **नाग** नामक राजा का पुत्र सोमदत्त दैगम्बरी मुनिदीक्षा ग्रहण कर लेता है। पश्चात् उसका पुत्र वैरकुमार भी उनसे दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर मुनि बन जाता है। इसका वर्णन **वैरकुमारकथानक** (क्र.१२) के निम्नलिखित श्लोकों में किया गया है—

अत्रान्तरे स्तुतिं भक्त्या विधाय करकुड्मलम्।
तोषी वैरकुमारोऽपि सोमदत्तगुरुं जगौ॥ ७२॥

भगवन् देहि मे दीक्षां संसारार्णवतारिणीम्।
आहर्त्रीं नाकसौख्यस्य मोक्षसौख्यस्य च क्रमात्॥ ७३॥

श्रुत्वा वैरकुमारस्य भव्यसिंहस्य भारतीम्।
ददौ **दैगम्बरी दीक्षां** सोमदत्तगुरुस्तदा॥ ७४॥

नागदत्तमुनि-कथानक (क्र.२७) के अधोगत पद्यों में **शूरदत्त** राजा के द्वारा दैगम्बरी दीक्षा लिये जाने का कथन है—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शूरदत्तनरेन्द्रोऽपि नागदत्तमुनीश्वरम्।
सम्प्राप्य भक्तिसम्पन्नो ननाम कलनिस्वनः॥ ८३॥

पुनः पुनः प्रणम्येमं सामन्तैर्बहुभिः समम्।
शूरदत्तोऽपि जग्राह **दीक्षां दैगम्बरीमसौ**॥ ८४॥

चट, चेट और पाण्ड्यराज द्वारा दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण किये जाने का वर्णन **कर्कण्ड-महाराज-कथानक** (क्र.५६/पृ.१०१) के अधोलिखित श्लोक में है—

चटचेटौ समं वीरौ पाण्ड्यराजेन सत्वरम्।
दीक्षां दैगम्बरीं भव्यौ वीरसेनान्तिके दधौ॥ ४२६॥

यशोधर-चन्द्रमतीकथानक (क्र.७३) और **गजकुमारकथानक** (क्र.१३९) के निम्नलिखित पद्यों में भी राजाओं के द्वारा दैगम्बरी दीक्षा लिये जाने का कथन है—

यशोधरकुमाराय दत्त्वा राज्यश्रियं नृपः।
अभिनन्दनसामीप्ये **दीक्षां दैगम्बरीं** दधौ॥ ६॥
यशोधर-चन्द्रमती-कथानक।

ततः सुवासुनामानं समाहूय स्वनन्दनम्।
ददावनन्तवीर्योऽयं निजराज्यमकण्टकम्॥ ३३॥

बाह्यमाभ्यन्तरं सङ्गं हित्वाऽनन्तबलस्तदा।
दधौ सागरसेनान्ते **दीक्षां दैगम्बरीमरम्**॥ ३४॥
गजकुमारकथानक।

खण्डश्रीकथानक (क्र.६५/श्लोक ९०-९१) में राजा रुद्रदत्त के द्वारा तथा **नागश्रीकथानक** (क्र.६७/श्लोक ४८-४९) में राजा भगदत्त के द्वारा भी दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण किये जोन का उल्लेख है।

२. बृहत्कथाकोश में सर्वत्र नग्न मुनि को ही **श्रमण** कहा गया है, कहीं भी वस्त्रधारी के लिए 'श्रमण' संज्ञा का प्रयोग नहीं हुआ है। यथा—

'**श्रमणा नग्नरूपिणः।**' विष्णुकुमारकथानक/क्र.११/श्लोक ९।

'**नग्नः श्रमणः।**' नागदत्तमुनिकथानक/क्र.२७/श्लोक ७८।

'**नग्नश्रवणसामीप्यं**' यमपाशकथानक/क्र.७४/श्लोक ३६।

'**नग्नश्रमणपार्श्वे हि।**' यमपाशकथानक/क्र.७४/श्लोक ४४।

'**दर्शनेनास्य नग्नस्य।**' धान्यकुमारमुनि-कथानक/क्र.१४१/श्लोक ४८।

३. **निर्ग्रन्थ** शब्द का प्रयोग भी **नग्न** मुनि के लिए ही हुआ है, यथा **नारदपर्वत-कथानक** (क्र.७६) के निम्नलिखित श्लोक में—

सर्वग्रन्थपरित्यागं कृत्वा देहेऽपि निःस्पृहः।
निर्ग्रन्थो नग्नतां प्राप्तो भिक्षां भ्रमति सर्वदा॥ २०७॥

यहाँ यह भी ध्वनित किया गया है कि नग्नता स्वीकार न करना देह में स्पृहा (राग) होने का लक्षण है।

४. हरिषेण ने **दिगम्बर** शब्द का प्रयोग मुनि के पर्यायवाची के रूप में किया है, जिससे स्पष्ट है कि कोई भी वस्त्रधारी उनकी दृष्टि में 'मुनि' संज्ञा का पात्र नहीं है। **सोमशर्म-वारिषेण-कथानक** (क्र.१०) का निम्न पद्य द्रष्टव्य है—

स्तुत्वा वीरं यथायोग्यं सकलांश्च दिगम्बरान्।
वारिषेणोऽमुना सार्धं स्वस्थाने समुपाविशत्॥ ४७॥

अनुवाद–"भगवान् महावीर और सकल (समस्त) दिगम्बरों (नग्न मुनियों) की स्तुति करके वारिषेण सोमशर्मा के साथ अपने स्थान पर बैठ गये।"

वासुदेवकथानक (क्र.२९) का अधोलिखित पद्य भी इसका एक उदाहरण है—

नेमिनाथनुतिं कृत्वा सकलांश्च दिगम्बरान्।
वन्दित्वाऽयं सुखं तस्थौ वासुदेवः सवैद्यकः॥ १२॥

अनुवाद—"भगवान् नेमिनाथ की स्तुति तथा सकल दिगम्बरों की वन्दना करके वासुदेव, वैद्य के साथ सुखपूर्वक आसीन हो गये।

यहाँ **सकलांश्च दिगम्बरान्** उक्तियों से यह भी ध्वनित होता है कि हरिषेण की मान्यतानुसार भगवान् नेमिनाथ और महावीर के समवसरण में केवल दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व था, अपवादलिंगी सवस्त्र मुनियों (स्थविरकल्पियों) का नहीं। यदि हरिषेण यापनीय होते, तो सकल मुनियों में दिगम्बरों के साथ स्थविरों का भी उल्लेख करते हुए उन्हें भी नमस्कार किये जाने का वर्णन करते। ऐसा नहीं किया, इससे स्पष्ट है कि वे यापनीय नहीं थे, अपितु दिगम्बर थे।

५. **बृहत्कथाकोश** में दैगम्बरी दीक्षा को ही संसाररूपी समुद्र को पार करानेवाली तथा कर्मों का नाश करनेवाली कहा गया है—

ददौ दैगम्बरीं दीक्षां संसारार्णवतारिणीम्।
पद्मरथनृप-कथानक / क्र.५९ / श्लोक ३२।

दधौ दैगम्बरीं दीक्षां संसारार्णवतारिणीम्।
मयूरकथानक / क्र. १०२-१० / श्लोक २९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दीक्षां दैगम्बरीं चास्मै दीयतां कर्मनाशिनीम्।
सोमदत्त-विद्युच्चौर-कथानक / क्र. ४ / श्लोक ६३।
ददौ दैगम्बरीं दीक्षां हतयेऽखिलकर्मणाम्।
सोमदत्त-विद्युच्चौर-कथानक / क्र.४ / श्लोक ६८।

६. वस्त्रधारण करने को मुक्ति में बाधक बतलाया गया है। बृहत्कथाकोश के **भद्रबाहुकथानक** (१३१) में वर्णन है कि द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के समय जो मुनिसंघ रामिल्ल, स्थूलवृद्ध और भद्राचार्य के नेतृत्व में सिन्धुदेश चला गया था, उसने भिक्षाग्रहण के समय होनेवाले उपद्रवों से बचने के लिए **अर्धफालक** (नग्नता को छिपाने के लिए बायें हाथ पर लटकाया गया अर्धवस्त्र) ग्रहण कर लिया था और मुनि भिक्षापात्र भी पास में रखने लगे थे। दुर्भिक्ष समाप्त होने पर जब वे लौटे तब रामिल्ल, स्थूलवृद्ध और भद्राचार्य ने संघ के मुनियों से कहा कि अब हमें मोक्ष प्राप्त करने के लिए अर्धफालक त्यागकर निर्ग्रन्थरूप धारण कर लेना चाहिए। उनके वचन सुनकर अनेक मुनियों ने अर्धफालक त्यागकर निर्ग्रन्थरूप धारण कर लिया। रामिल्ल आदि तीनों ने भी संसार से भयभीत होकर निर्ग्रन्थरूप ग्रहण कर लिया, किन्तु जिन अज्ञानी, कायर और शक्तिहीन मुनियों को गुरुओं के ये संसारसमुद्र से पार लगानेवाले वचन नहीं रुचे, उन्होंने अपने मन से **जिनकल्प** (अचेललिंग) और **स्थविरकल्प** (सचेललिंग) इन दो प्रकार के मोक्षमार्गों की कल्पना कर अर्धफालक सम्प्रदाय चला दिया। देखिए हरिषेण के भद्रबाहुकथानकगत ये वचन—

रामिल्ल-स्थविर-स्थूलभद्राचार्याः स्वसाधुभिः।
आहूय सकलं सङ्घमित्थमूचुः परस्परम्॥ ६२॥

हित्वाऽर्धफालकं तूर्णं मुनयः प्रीतमानसाः।
निर्ग्रन्थरूपतां सारामाश्रयध्वं विमुक्तये॥ ६३॥

श्रुत्वा तद्वचनं सारं मोक्षावाप्तिफलप्रदम्।
दधुर्निर्ग्रन्थतां केचिन्मुक्तिलालसचेतसः॥ ६४॥

रामिल्लः स्थविरः स्थूलभद्राचार्यस्त्रयोऽप्यमी।
महावैराग्यसम्पन्ना विशाखाचार्यमाययुः॥ ६५॥

त्यक्त्वाऽर्धकर्पटं सद्यः संसारात्त्रस्तमानसाः।
नैर्ग्रन्थ्यं हि तपः कृत्वा मुनिरूपं दधुस्त्रयः॥ ६६॥

इष्टं न यैर्गुरोर्वाक्यं संसारार्णवतारकम्।
जिनस्थविरकल्पं च विधाय द्विविधं भुवि॥ ६७॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अर्धफालक—संयुक्तमज्ञात—परमार्थकै :।
तैरिदं कल्पितं तीर्थं कातरैः शक्तिवर्जितैः॥ ६८॥

इन श्लोकों में हरिषेण ने तीन महत्त्वपूर्ण बातें कहीं हैं—

क—वस्त्रधारण करना मोक्ष-प्राप्ति में बाधक है।

ख—मोक्ष की प्राप्ति निर्ग्रन्थ (नग्न) वेश से ही सम्भव है।

ग— जिनकल्प और स्थविरकल्प, मोक्षमार्ग के ये दो भेद अथवा मुनियों के दो लिंग भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट नहीं हैं, अपितु द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के समय ग्रहण किये गये अर्धफालक को छोड़ने में जो असमर्थ थे, उन शिथिलाचारी, देहसुखाकांक्षी, परीषहभीरु साधुओं ने अपने मन से कल्पित किये थे। भगवान् महावीर ने तो मुनियों के लिए एक मात्र निर्ग्रन्थ (नग्न) लिंग का ही उपदेश दिया था।

ये तीन मान्यताएँ हरिषेण की सवस्त्रमुक्ति-विरोधी विचारधारा को एकदम स्पष्ट कर देती हैं। सवस्त्रमुक्तिनिषेध से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वे स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और अन्यलिंगिमुक्ति के भी विरोधी हैं।

७. 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने यापनीयग्रन्थ के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए बतलाया है कि जिस ग्रन्थ में क्षुल्लक को गृहस्थ न मानकर अपवादलिंगधारी मुनि कहा गया हो, उसे यापनीयग्रन्थ मानना चाहिए। (पृ.८२)। इस लक्षण के अनुसार भी **बृहत्कथाकोश** यापनीयमतविरोधी सिद्ध होता है, क्योंकि उसमें **क्षुल्लक को श्रावक कहा गया है।** एक रुद्रदत्त नामक ब्राह्मण युवक जिनदास श्रेष्ठी की रूपवती कन्या के साथ विवाह करने के लिए क्षुल्लक का कपटवेश धारण कर लेता है और चैत्यगृह में जाकर ठहर जाता है। वहाँ जिनदास उसे देखता है और पूछता है कि हे स्वामी! आपने यह ब्रह्मचर्यव्रत क्या जीवनपर्यन्त के लिए लिया है? क्षुल्लक कहता है-"जीवनपर्यन्त के लिए नहीं लिया।" तब जिनदास कहता है कि "यदि आपने जीवनपर्यन्त के लिये ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण नहीं किया है, तो मैं अपनी रूपवती कन्या आप सम्यग्दृष्टि श्रावक को देना चाहता हूँ। यदि आप चाहें तो उसका पाणिग्रहण करें।" यह वार्तालाप बृहत्कथाकोशगत **खण्डश्री-कथानक** (क्र.६५) के निम्नलिखित श्लोकों में निबद्ध है—

किं त्वया क्षुल्लक स्वामिन्! ब्रह्मचर्यमिदं धृतम्।
सर्वकालं न वा ब्रूहि साम्प्रतं मम निश्चितम्॥ ३७॥

जिनदासवचः श्रुत्वा **क्षुल्लको** निजगाद तम्।
ब्रह्मचर्यमिदं श्रेष्ठिन् सर्वकालं न मे धृतम्॥ ३८॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अवाचि जिनदासेन रुद्रदत्तः कुतूहलात्।
गृहीतं सर्वकालं नो ब्रह्मचर्यं यदि त्वया॥ ४०॥

विद्यते मद्गृहे कन्या ब्राह्मणी रूपशालिनी।
मिथ्यादर्शनयुक्तेभ्यो न दत्ता सा मया सती॥ ४१॥

सम्यग्दर्शनयुक्तस्य **श्रावकस्य ददामि ते**।
यदीच्छा विद्यते तस्यास्ततः पाणिग्रहं कुरु॥ ४२॥

यद्यपि एक क्षुल्लक का आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण न करना जिनागम के विरुद्ध है, तथापि रुद्रदत्त नामक ब्राह्मण युवक क्षुल्लक का कपटवेश धारण करता है और जिनदास श्रेष्ठी उस क्षुल्लक को श्रावक की श्रेणी में परिगणित करता है, यह ध्यान देने योग्य है।

जिनदास श्रेष्ठी दिगम्बरपरम्परानुसार उक्त क्षुल्लक को मुनियों के योग्य **नमोऽस्तु** निवेदित न कर श्रावकों के योग्य **इच्छाकार** निवेदित करता है। **खण्डश्रीकथानक** (क्र. ६५) का यह श्लोक द्रष्टव्य है–

विलोक्य **क्षुल्लकं** श्रेष्ठी चैत्यगेहे व्यवस्थितम्।
इच्छाकारं विधायास्य पप्रच्छेति स तोषतः॥ २५॥

विद्युल्लतादिकथानक (क्र.७०) में भी क्षुल्लक को **इच्छाकार** किये जाने का वर्णन है—

दृष्ट्वा तं **क्षुल्लकं** तेन धर्मवात्सल्यकारणात्।
श्रेष्ठिना सङ्गृहीतोऽसा**विच्छाकारं** प्रकुर्वता॥ ८६॥

यशोधर-चन्द्रमतीकथानक (क्र.७३) के पूर्वोद्धृत '**युवां सुकुमाराङ्गा**' इत्यादि श्लोकत्रय (२३७, २३८,२९९) में वर्णन है कि वैराग्य को प्राप्त दो राजकुमार मुनि-महाराज से मुनिदीक्षा की प्रार्थना करते हैं, किन्तु मुनिराज उनसे कहते हैं कि अभी तुम्हारा शरीर सुकुमार है, उसे परीषह सहने का अभ्यास नहीं है। अतः तुम्हारे लिए मुनिव्रत का पालन दुष्कर है। अभी तुम्हें क्षुल्लकधर्म का अभ्यास करना चाहिए। आगे चलकर मैं तुम दोनों को दिगम्बरधर्म प्रदान करूँगा। वे दोनों क्षुल्लक बन जाते हैं और बाद में क्षुल्लकधर्म का परित्याग कर मुनिदीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हरिषेण ने क्षुल्लक को मुनितुल्य एवं मोक्ष के योग्य नहीं माना है, उसे श्रावक की श्रेणी में ही परिगणित किया है और स्पष्ट किया है कि क्षुल्लक का पद त्याग कर दिगम्बरमुनि दीक्षा लेने पर ही मोक्ष संभव है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"उन दोनों क्षुल्लकों ने क्षुल्लक-धर्म त्याग कर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली" (देखिये, शीर्षक २/अनुच्छेद ३)। इस कथन से तो एकदम स्पष्ट हो जाता है कि हरिषेण के अनुसार क्षुल्लक और मुनि अलग-अलग श्रेणी के साधक हैं। क्षुल्लक का पद मुनिपद से हीन है और मुनि से हीन पद श्रावक का ही होता है।

हरिषेण की दृष्टि में क्षुल्लक किसी को मुनिदीक्षा देने के योग्य नहीं होता। **यशोधर-चन्द्रमतीकथानक** (क्र.७३) में राजा मारिदत्त एक क्षुल्लक से मुनिदीक्षा की प्रार्थना करता है, किन्तु क्षुल्लक कहता है कि मैं तुम्हें दीक्षा देने में समर्थ नहीं हूँ, हमारे गुरु ही तुम्हें मुनिदीक्षा दे सकते हैं।[१४] यह सुनकर राजा सोचता है कि सारी प्रजा मेरे चरणों का आश्रय लेती है, मैं देवताओं के चरणों का आश्रय लेता हूँ, देवता क्षुल्लक के चरणों का अवलम्बन करते हैं और क्षुल्लक मुनि के चरणों की शरण लेते हैं। अहो! मुनि का पद कितना महान् है! राजा, सुदत्तमुनि के पास जाकर मुनिदीक्षा ले लेता है। (यशो. चन्द्र. कथा./क्र.७३/श्लोक २८७-२९८)। इससे भी सिद्ध है कि हरिषेण क्षुल्लक को उत्कृष्ट श्रावक की ही श्रेणी में रखते हैं।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त कथानक में पहले मुनि को नमस्कार किये जाने का वर्णन है, पश्चात् क्षुल्लकों को-**"ततो नत्वा मुनिं भक्त्या तदा क्षुल्लकयुग्मकम्।"** (श्लोक २५१)। यह भी मुनि और क्षुल्लक में महान् भेद स्वीकार किये जाने का प्रमाण है।

स्त्रियों में क्षुल्लिका और आर्यिका इन दो पदों का वर्णन किया गया है, जिनमें **क्षुल्लिका आर्यिका से हीन मानी गई है।**[१५] यह भी क्षुल्लक ओर क्षुल्लिका दोनों को श्रावकश्रेणी में मान्य किये जाने का सबूत है। आर्यिका को यद्यपि उपचारमहाव्रती होने से क्षुल्लिका से उच्च पद दिया गया है, तथापि हरिषेण दिगम्बर (नग्न) मुनि को ही मोक्ष का पात्र मानते हैं। इससे सिद्ध है कि उनकी दृष्टि में आर्यिका का पद मुनिपद से निम्न है।

---

१४. देहि मे क्षुल्लक स्वामिन्! प्रव्रज्यां भवनाशिनीम्।
येनाहं त्वत्प्रसादेन करोमि हितमात्मनः॥ २८४॥
मारिदत्तोदितं श्रुत्वा क्षुल्लकोऽपि जगाद तम्।
दातुं ते न समर्थोऽहं दीक्षामुत्तिष्ठ भूपते॥ २८५॥
अस्माकं गुरवः सन्ति कीर्तिच्छन्नदिगन्तराः।
ते समर्थास्तपो दातुं भवतो ज्ञानिनोऽमलाः॥ २८६॥ यशोधर-चन्द्रमती-कथानक।

१५. क— अभयादिमतिर्भक्त्या जग्राह क्षौल्लकं व्रतम्॥ २४०॥ यशोधर-चन्द्रमती-कथानक।
ख— धर्मश्रियोऽर्यिकाया हि धर्मविन्यस्तचेतसः।
ततः समाधिगुप्तेन क्षुल्लिकेयं समर्पिता॥ २८॥ लक्ष्मीमती-कथानक/क्र.१०८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"उन दोनों क्षुल्लकों ने क्षुल्लक-धर्म त्याग कर मुनिदीक्षा ग्रहण कर ली" (देखिये, शीर्षक २/अनुच्छेद ३)। इस कथन से तो एकदम स्पष्ट हो जाता है कि हरिषेण के अनुसार क्षुल्लक और मुनि अलग-अलग श्रेणी के साधक हैं। क्षुल्लक का पद मुनिपद से हीन है और मुनि से हीन पद श्रावक का ही होता है।

हरिषेण की दृष्टि में क्षुल्लक किसी को मुनिदीक्षा देने के योग्य नहीं होता। **यशोधर-चन्द्रमतीकथानक** (क्र.७३) में राजा मारिदत्त एक क्षुल्लक से मुनिदीक्षा की प्रार्थना करता है, किन्तु क्षुल्लक कहता है कि मैं तुम्हें दीक्षा देने में समर्थ नहीं हूँ, हमारे गुरु ही तुम्हें मुनिदीक्षा दे सकते हैं।[१४] यह सुनकर राजा सोचता है कि सारी प्रजा मेरे चरणों का आश्रय लेती है, मैं देवताओं के चरणों का आश्रय लेता हूँ, देवता क्षुल्लक के चरणों का अवलम्बन करते हैं और क्षुल्लक मुनि के चरणों की शरण लेते हैं। अहो! मुनि का पद कितना महान् है! राजा, सुदत्तमुनि के पास जाकर मुनिदीक्षा ले लेता है। (यशो. चन्द्र. कथा./क्र.७३/श्लोक २८७-२९८)। इससे भी सिद्ध है कि हरिषेण क्षुल्लक को उत्कृष्ट श्रावक की ही श्रेणी में रखते हैं।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त कथानक में पहले मुनि को नमस्कार किये जाने का वर्णन है, पश्चात् क्षुल्लकों को-**"ततो नत्वा मुनिं भक्त्या तदा क्षुल्लकयुग्मकम्।"** (श्लोक २५१)। यह भी मुनि और क्षुल्लक में महान् भेद स्वीकार किये जाने का प्रमाण है।

स्त्रियों में क्षुल्लिका और आर्यिका इन दो पदों का वर्णन किया गया है, जिनमें **क्षुल्लिका आर्यिका से हीन मानी गई है।**[१५] यह भी क्षुल्लक ओर क्षुल्लिका दोनों को श्रावकश्रेणी में मान्य किये जाने का सबूत है। आर्यिका को यद्यपि उपचारमहाव्रती होने से क्षुल्लिका से उच्च पद दिया गया है, तथापि हरिषेण दिगम्बर (नग्न) मुनि को ही मोक्ष का पात्र मानते हैं। इससे सिद्ध है कि उनकी दृष्टि में आर्यिका का पद मुनिपद से निम्न है।

---

१४. देहि मे क्षुल्लक स्वामिन्! प्रव्रज्यां भवनाशिनीम्।
येनाहं त्वत्प्रसादेन करोमि हितमात्मनः॥ २८४॥
मारिदत्तोदितं श्रुत्वा क्षुल्लकोऽपि जगाद तम्।
दातुं ते न समर्थोऽहं दीक्षामुत्तिष्ठ भूपते॥ २८५॥
अस्माकं गुरवः सन्ति कीर्तिच्छन्नदिगन्तराः।
ते समर्थास्तपो दातुं भवतो ज्ञानिनोऽमलाः॥ २८६॥ यशोधर-चन्द्रमती-कथानक।

१५. क— अभयादिमतिर्भक्त्या जग्राह क्षौल्लकं व्रतम्॥ २४०॥ यशोधर-चन्द्रमती-कथानक।
ख— धर्मश्रियोऽर्यिकाया हि धर्मविन्यस्तचेतसः।
ततः समाधिगुप्तेन क्षुल्लिकेयं समर्पिता॥ २८॥ लक्ष्मीमती-कथानक/क्र.१०८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस तरह बृहत्कथाकोश में क्षुल्लक को श्रावक की श्रेणी में परिगणित किया जाना भी इस बात का प्रमाण है कि हरिषेण सवस्त्रलिंग को मुनि का अपवादलिंग नहीं मानते, अपितु श्रावक का लिंग मानते हैं, अतः वे यापनीय-आचार्य नहीं, अपितु दिगम्बराचार्य हैं।

८. हरिषेण ने सवस्त्रदीक्षा का विधान केवल श्रावकों (श्रावक-श्राविकाओं, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं) और आर्यिकाओं के लिए बतलाया है। दीक्षा धारण करनेवालों में कहीं भी सवस्त्र मुनियों या स्थविरकल्पियों का उल्लेख नहीं है। **नागश्रीकथानक** (क्र.६७) के निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य हैं—

अन्योऽपि भूपसङ्घातो भोगनिःस्पृहमानसः।
दधौ दैगम्बरीं दीक्षां धर्मसेनान्तिके मुदा॥ ४९॥

केचित् सम्यक्त्वपूर्वाणि व्रतान्यादाय भक्तितः।
अणूनि श्रावका जाता जिनधर्मपरायणाः॥ ५०॥

मुण्डिताद्यबलाः सद्यो महावैराग्यसङ्गताः।
ऋषभश्रीसमीपे हि बभूवुरर्जिकाः पराः॥ ५१॥

९. वस्त्रदान केवल आर्यिकाओं के लिए बतलाया गया है, मुनियों के लिये आहारदान, ओषधिदान एवं शास्त्रदान इन तीन दानों का ही उल्लेख है। **अशोक-रोहिणी-कथानक** (क्र.५७) के ये पद्य साक्षी हैं—

पञ्चमीपुस्तकं दिव्यं पञ्चपुस्तकसंयुतम्।
साधुभ्यो दीयते भक्त्या भेषजं च यथोचितम्॥ ५३५॥

आहारदानमादेयं भक्तितो भेषजादिकम्।
वस्त्राणि चार्यिकादीनां दातव्यानि मुमुक्षिभिः॥ ५३६॥

१०. बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह का त्याग करनेवालों को ही श्रमण या मुनि कहा गया है—

केचित् **परिग्रहं हित्वा बाह्याभ्यन्तरभेदगम्।**
महाव्रतधरा धीरा बभूवुः श्रमणास्तदा॥ ४०॥

केचिच्छ्रावकतां प्राप्ताः केचित्सम्यक्त्वतोषिणः।
केचित्प्रशंसनं कुर्युः जिननाथस्य शासने॥ ४१॥

श्रेणिकनृप-कथानक / क्र.९।

बाह्यमाभ्यन्तरं सङ्गं हित्वा सर्वं विशुद्धधीः।
जग्राह श्रीधराभ्याशे शुभ्रकीर्तिनृपस्तपः॥ ४४८॥
अशोक-रोहिणी-कथानक / क्र.५७।

बाह्यमाभ्यन्तरं सङ्गं हित्वाऽनन्तबलस्तदा।
दधौ सागरसेनान्ते **दीक्षां दैगम्बरीमरम्**॥ ३४॥
गजकुमार-कथानक / क्र.१३९।

इन दस प्रमाणों से सिद्ध है कि बृहत्कथाकोश में सवस्त्रमुक्ति का निषेध अनेक द्वारों से किया गया है और केवल दैगम्बरी दीक्षा ही मोक्ष का मार्ग बतलायी गयी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हरिषेण सवस्त्र अपवादलिंगधारी स्थविरकल्पी मुनियों, स्त्रियों, गृहस्थों और अन्यलिंगियों, इन सभी की मुक्ति के विरोधी हैं, क्योंकि ये सभी वस्त्रधारी होते हैं।

४

भगवती-आराधना दिगम्बरग्रन्थ

यापनीयपक्ष

यापनीयपक्षधर ग्रन्थद्वय के लेखक-लेखिका ने बृहत्कथाकोश को यापनीय ग्रन्थ मानने के पक्ष में एक हेतु यह बतलाया है कि इसकी कथाएँ भगवती-आराधना पर आधारित हैं और भगवती-आराधना यापनीयमत का ग्रन्थ है, इसलिए बृहत्कथाकोश भी यापनीयग्रन्थ है। (या.औ.उ.सा./पृ.१५२, जै.ध.या.स./पृ.१६५)।

दिगम्बरपक्ष

यह पूर्व में सिद्ध किया जा चुका है कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है। इसलिए बृहत्कथाकोश को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया उपर्युक्त हेतु मिथ्या है।

५

पुन्नाटसंघ : दिगम्बरसंघ

यापनीयपक्ष

'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि हरिषेण पुन्नाटसंघीय थे और पुन्नाटसंघ की उत्पत्ति यापनीयों के पुन्नागवृक्षमूलगण से हुई थी, अतः हरिषेण यापनीय थे। (पृ.१६६)। 'यापनीय और उनका साहित्य' ग्रन्थ की लेखिका लिखती हैं कि बृहत्कथाकोश में स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति जैसे सिद्धान्तों का समर्थन पुन्नाटसंघ के यापनीय होने का प्रबल प्रमाण है। (पृ.१५३)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बाह्यमाभ्यन्तरं सङ्गं हित्वा सर्वं विशुद्धधीः।
जग्राह श्रीधराभ्याशे शुभ्रकीर्तिनृपस्तपः॥ ४४८॥
अशोक-रोहिणी-कथानक / क्र.५७।

बाह्यमाभ्यन्तरं सङ्गं हित्वाऽनन्तबलस्तदा।
दधौ सागरसेनान्ते **दीक्षां दैगम्बरीमरम्**॥ ३४॥
गजकुमार-कथानक / क्र.१३९।

इन दस प्रमाणों से सिद्ध है कि बृहत्कथाकोश में सवस्त्रमुक्ति का निषेध अनेक द्वारों से किया गया है और केवल दैगम्बरी दीक्षा ही मोक्ष का मार्ग बतलायी गयी है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हरिषेण सवस्त्र अपवादलिंगधारी स्थविरकल्पी मुनियों, स्त्रियों, गृहस्थों और अन्यलिंगियों, इन सभी की मुक्ति के विरोधी हैं, क्योंकि ये सभी वस्त्रधारी होते हैं।

४

भगवती-आराधना दिगम्बरग्रन्थ

यापनीयपक्ष

यापनीयपक्षधर ग्रन्थद्वय के लेखक-लेखिका ने बृहत्कथाकोश को यापनीय ग्रन्थ मानने के पक्ष में एक हेतु यह बतलाया है कि इसकी कथाएँ भगवती-आराधना पर आधारित हैं और भगवती-आराधना यापनीयमत का ग्रन्थ है, इसलिए बृहत्कथाकोश भी यापनीयग्रन्थ है। (या.औ.उ.सा./पृ.१५२, जै.ध.या.स./पृ.१६५)।

दिगम्बरपक्ष

यह पूर्व में सिद्ध किया जा चुका है कि भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है। इसलिए बृहत्कथाकोश को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किया गया उपर्युक्त हेतु मिथ्या है।

५

पुन्नाटसंघ : दिगम्बरसंघ

यापनीयपक्ष

'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि हरिषेण पुन्नाटसंघीय थे और पुन्नाटसंघ की उत्पत्ति यापनीयों के पुन्नागवृक्षमूलगण से हुई थी, अतः हरिषेण यापनीय थे। (पृ.१६६)। 'यापनीय और उनका साहित्य' ग्रन्थ की लेखिका लिखती हैं कि बृहत्कथाकोश में स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति जैसे सिद्धान्तों का समर्थन पुन्नाटसंघ के यापनीय होने का प्रबल प्रमाण है। (पृ.१५३)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दिगम्बरपक्ष

पुन्नाटसंघ की उत्पत्ति यापनीयों के पुन्नागवृक्षमूलगण से हुई थी, यह मान्यता सर्वथा कपोलकल्पित है। 'पुन्नाट' कर्नाटक का प्राचीन नाम था। उसी के आधार पर पुन्नाट के दिगम्बर जैन मुनियों का संघ 'पुन्नाटसंघ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। इसका प्रतिपादन 'हरिवंशपुराण' के अध्याय (२१) में किया जा चुका है। 'बृहत्कथाकोश' में स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति आदि का समर्थन है, यह मान्यता भी नितान्त असत्य है। उसमें स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति, गृहस्थमुक्ति आदि यापनीय-सिद्धान्तों का स्पष्ट शब्दों में निषेध है, इसके प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत किये जा चुके हैं। 'हरिवंशपुराण' में भी इन यापनीयमत-विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। अतः इनके कर्त्ताओं का पुन्नाटसंघ यापनीयसंघ हो ही नहीं सकता। वह स्पष्टतः दिगम्बरसंघ था।

६

दिगम्बर ग्रन्थ होने के अन्य प्रमाण

१. बृहत्कथाकोश के **रेवतीकथानक** (क्र.७) में अन्यलिंगियों को **कुतीर्थलिंगी** कहा गया है।[१६] यह अन्यलिंगीमुक्ति के निषेध का प्रमाण है, जो यापनीयमत के विरुद्ध है।

२. मुनियों के आहारदान की विधि पूर्णतः दिगम्बरमत के अनुसार बतलाई गई है। श्रीषेणमुनि आहारचर्या के लिए गृहों के सामने से निकलते हैं। शूरदेव उनका पड़गाहन (प्रतिग्रह) करता है, पवित्र स्थान में बैठालकर उनके चरणों को धोता है, पूजन करता है, 'नमोऽस्तु' करता है और मन, वचन, काय एवं आहार की शुद्धि निवेदित करता है। पश्चात् आहारदान करता है। मुनि खड़े होकर भोजन करते हैं। आहारदान से शूरदेव के यहाँ पंचाश्चर्य होते हैं।[१७]

३. बृहत्कथाकोश में महावीर के पूर्वभवों का दिगम्बरमतानुसार वर्णन किया गया है। श्वेताम्बरसाहित्य में महावीर के २६ पूर्वभवों का वर्णन है, और दिगम्बरग्रन्थों में ३२ का। श्वेताम्बरसाहित्य के अनुसार पहले भव में महावीर **नयसार ग्रामचिन्तक** थे,[१८] जब कि दिगम्बरसाहित्य के अनुसार पुरूरवा भील। बृहत्कथाकोश में दिगम्बर-मतानुसार पुरूरवाभील को ही महावीर के पूर्वभव का जीव बतलाया गया है,[१९] अतः वह दिगम्बरग्रन्थ है।

---

१६. सम्यग्दर्शनसम्पन्ना जिनोक्तमतसङ्गिनी।
कुतीर्थलिङ्गि-पाषण्डचरित-च्युतमानसा॥ २७॥

१७. विद्युल्लतादिकथानक/क्र.७०/श्लोक ८-१२ तथा विष्णुश्रीकथानक/क्र. ६६/श्लोक ६-१२, ३७-४२।

१८. आचार्य हस्तीमल जी: जैनधर्म का मौलिक इतिहास/भाग १/पृ. ५४०।

१९. मुनिवाक्यं समाकर्ण्य धर्मशीलपुरूरवा॥ ६॥ मरीचिकथानक/क्र.१११।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७

भद्रबाहुकथानक में कोई भी अंश प्रक्षिप्त नहीं

यापनीयपक्ष

पूर्वनिर्दिष्ट यापनीयपक्षधर लेखक-लेखिका की मान्यता है कि सम्पूर्ण बृहत्कथाकोश में यापनीयमत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, केवल उसके भद्रबाहुकथानक (क्र.१३१) में जो शिथिलाचारी श्वेताम्बर साधुओं से यापनीयसंघ की उत्पत्ति बतलाई गई है, वह अंश प्रक्षिप्त है। श्रीमती पटोरिया लिखती हैं कि भद्रबाहुकथा अर्द्धफालकसम्प्रदाय से काम्बलतीर्थ (श्वेताम्बरसम्प्रदाय) की उत्पत्ति बताकर समाप्त हो जाती है। उसके बाद किसी यापनीयविरोधी व्यक्ति ने निम्नलिखित श्लोक जोड़ दिया है—

ततः कम्बलिकातीर्थान्नूनं सावलिपत्तने।
दक्षिणापथदेशस्थे जातो यापनसङ्घकः॥ ८१॥[२०]

अनुवाद—"उसके बाद उस काम्बलिक तीर्थ से दक्षिणापथदेश के सावलिपत्तन नगर में यापनीयसंघ की उत्पत्ति हुई।"

दिगम्बरपक्ष

भद्रबाहुकथानक (क्र.१३१) का यह अन्तिम श्लोक है। श्रीमती पटोरिया और डॉ० सागरमल जी ने सम्पूर्ण बृहत्कथाकोश में भद्रबाहुकथानक के केवल इसी श्लोक को यापनीयमतविरोधी माना है, शेष सम्पूर्णग्रन्थ को यापनीयमत-समर्थक, इसलिए इसे उन्होंने प्रक्षिप्त मान लिया है।

किन्तु हम देख चुके हैं कि बृहत्कथाकोश का केवल यही श्लोक यापनीयमतविरोधी नहीं है, अपितु सम्पूर्ण ग्रन्थ यापनीयमतविरोधी सिद्धान्तों से भरा हुआ है। भद्रबाहुकथानक में भी केवल उक्त श्लोक यापनीयमतविरोधी नहीं है, उसमें तो शुरू से लेकर अन्त तक वर्णित प्रत्येक घटना और सिद्धान्त यापनीयमत-विरोधी है। देखिए—

१. भद्रबाहुकथानक में दिगम्बर आचार्यपरम्परा के चौथे श्रुतकेवली गोवर्धन को भद्रबाहु का गुरु कहा गया है-"**गोवर्धनश्चतुर्थोऽसावाचतुर्दशपूर्विणाम्**" (श्लोक ९)। यह यापनीयमत के विरुद्ध है, क्योंकि यापनीय श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण मानते थे, इसलिए उनके कर्त्ता श्वेताम्बराचार्य ही उनके लिए प्रमाण थे। श्वेताम्बरपरम्परा के अनुसार भद्रबाहु के गुरु आचार्य यशोभद्र थे।

---

२०. यापनीय और उनका साहित्य/पृ.१५३, जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय/पृ. १६९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२. उक्त कथानक में भद्रबाहु के लिए दिगम्बरमान्यतानुसार श्रुतकेवली शब्द का प्रयोग किया गया है। "**पूर्वोक्तपूर्विणां मध्ये पञ्चमः श्रुतकेवली---भद्रबाहुरयं बटुः**" (श्लोक १२-१३)। यह भी यापनीयमत के अनुकूल नहीं है, क्योंकि श्वेताम्बर-परम्परा में श्रुतकेवली के लिए **चतुर्दशपूर्वधर**[२१] विशेषण का प्रयोग मिलता है।

३. भद्रबाहुकथानक में कहा गया है कि महावीर के संघ के सभी साधु निर्ग्रन्थ (नग्न) थे, कोई भी साधु सवस्त्र-अपवादलिंगधारी नहीं था। द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के समय जब निर्ग्रन्थसाधुओं का एक वर्ग सिन्धु देश चला गया, तब वहाँ की दुर्भिक्षकालीन उपद्रवात्मक परिस्थितियों के कारण अस्थायीरूप से अर्धफालक (नग्नता को छिपाने के लिए हाथ पर लटका कर रखा जानेवाला आधा वस्त्र) धारण करने लगा।

यावन्न शोभनः कालो जायते साधवः स्फुटम्।
तावच्च वामहस्तेन पुरः कृत्वाऽर्धफालकम्॥ ५८॥

भिक्षापात्रं समादाय दक्षिणेन करेण च।
गृहीत्वा नक्तमाहारं कुरुध्वं भोजनं दिने॥ ५९॥

यह कथन भी यापनीयमत के विरुद्ध है, क्योंकि यापनीयों की मान्यता है कि सवस्त्र अपवादलिंग भी भगवान् महावीर के द्वारा ही उपदिष्ट है।

४. उक्त कथानक में सवस्त्रता को कर्मबन्ध का कारण तथा निर्ग्रन्थता (नग्नता) को मुक्ति का हेतु प्रतिपादित करते हुए जिन मुनियों ने दुर्भिक्ष के समय अर्धफालक ग्रहण कर लिया था, उनसे उसका त्याग करने के लिए कहा जाता है—

हित्वार्धफालकं तूर्णं मुनयः प्रीतमानसाः।
निर्ग्रन्थरूपतां सारामाश्रयध्वं विमुक्तये॥ ६३॥

यह उपदेश भी यापनीयमत-विरोधी है, क्योंकि यापनीयमत में माना गया है कि सवस्त्र अपवादलिंगधारी साधु भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

५. कथानक में कहा गया है कि उपर्युक्त उपदेश से अनेक मुक्तिकामी साधुओं ने तो अर्धफालक त्याग दिया, किन्तु कुछ शिथिलाचारी, परीषहभीरु, अज्ञानी साधुओं ने उसे त्यागने से इनकार कर दिया और जिनकल्प एवं स्थविरकल्प ऐसे दो मोक्षमार्गों की कल्पना कर निर्ग्रन्थ (नग्न) परम्परा से विपरीत स्थविरकल्प नामक सवस्त्र मोक्षमार्ग प्रचलित कर दिया—

---

२१. क—मेधाविनौ भद्रबाहुसम्भूतविजयौ मुनी।
चतुर्दशपूर्वधरौ तस्य शिष्यौ बभूवतुः॥ ६/३॥ परिशिष्टपर्व।
ख—आचार्य हस्तीमलजी : जैनधर्म का मौलिक इतिहास/भाग २/पृष्ठ ४१३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इष्टं न यैर्गुरोर्वाक्यं संसारार्णवतारकम्।
जिनस्थविरकल्पं च विधाय द्विविधं भुवि॥ ६७॥
अर्धफालक – संयुक्तमज्ञात –परमार्थकैः।
तैरिदं कल्पितं तीर्थं कातरैः शक्तिवर्जितैः॥ ६८॥

यह कथन तो यापनीयों के लिए अत्यन्त लज्जाजनक है। इसमें सवस्त्र अपवादलिंग नामक स्थविरकल्प को शिथिलाचारी, परीषहभीरु और परमार्थ के ज्ञान से शून्य अज्ञानियों द्वारा कल्पित बतलाया गया है, जबकि यापनीय उसे सर्वज्ञ महावीर द्वारा उपदिष्ट मानते थे।

६. कथानक में कहा गया है कि अर्धफालकधारी साधुओं ने सौराष्ट्रदेश की वलभीपुरी में राजा की आज्ञा से अर्धफालक त्यागकर ऋजुवस्त्र धारण कर लिया। तब से काम्बलतीर्थ (श्वेताम्बरसम्प्रदाय) प्रचलित हो गया। पश्चात् इस काम्बलसम्प्रदाय से दक्षिणभारत के **सावालिपत्तन** में यापनीयसंघ की उत्पत्ति हुई—

यदि निर्ग्रन्थतारूपं ग्रहीतुं नैव शक्नुथ।
ततोऽर्धफालकं हित्वा स्वविडम्बनकारणम्॥ ७८॥
ऋजुवस्त्रेण चाच्छाद्य स्वशरीरं तपस्विनः।
तिष्ठत प्रीतिचेतस्का मद्वाक्येन महीतले ॥ ७९॥
लाटानां प्रीतिचित्तानां ततस्तद्दिवसं प्रति।
बभूव काम्बलं तीर्थं वप्रवादनृपाज्ञया॥ ८०॥
ततः कम्बलिकातीर्थान्नूनं सावलिपत्तने।
दक्षिणापथदेशस्थे जातो यापनसङ्घकः॥ ८१॥

यह उल्लेख भी यापनीयों के लिए अपमानजनक है, क्योंकि इसमें उनकी उत्पत्ति एक ऐसे साधुवर्ग से बतलाई गई है जो राजा की आज्ञा से अपने **लिंग** (वेष) को बदल लेता है। इससे स्पष्ट होता है कि उनका लिंग सर्वज्ञोपदिष्ट नहीं था, अपितु राजा द्वारा आरोपित था, फलस्वरूप उन्होंने उसे कर्मक्षय के लिए नहीं, अपितु राजमान्यता और लोकमान्यता प्राप्त कर जीवननिर्वाह के लिए अपनाया था।

अब यदि इस कथानक के अन्तिम श्लोक को प्रक्षिप्त मान भी लिया जाय, तो भी उपर्युक्त सभी उल्लेख यापनीयमत के घोरविरोधी हैं। और बृहत्कथाकोश के अन्य कथानकों में उपलब्ध स्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और अन्यलिंगिमुक्ति का निषेध करनेवाले कथन तो यापनीयमत-विरोधी हैं ही। इस प्रकार सम्पूर्ण बृहत्कथा-कोश यापनीयमत-विरोधी सिद्धान्तों से परिपूर्ण है। इसलिए भद्रबाहु-कथानक का अन्तिम श्लोक, जिसे प्रक्षिप्त मान लिया गया है, वह प्रक्षिप्त सिद्ध नहीं होता।

उपर्युक्त यापनीयमत-विरोधी सात तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश यापनीयग्रन्थ नहीं, बल्कि दिगम्बरग्रन्थ है।

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

चतुर्विंश अध्याय

छेदपिण्ड, छेदशास्त्र एवं प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

इनके दिगम्बरग्रन्थ होने के प्रमाण

'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक डॉ० सागरमल जी जैन ने उपर्युक्त तीन ग्रन्थों को भी यापनीयाचार्यकृत घोषित किया है, किन्तु वे दिगम्बराचार्यों के द्वारा ही प्रणीत हैं, यह निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध है—

छेदपिण्ड

१

मुनि के दिगम्बरमान्य अट्ठाईस मूलगुणों का विधान

उक्त यापनीयपक्षधर ग्रन्थलेखक ने स्वयं स्वीकार किया है कि "**छेदपिण्ड** अथवा **छेदपिण्ड-प्रायश्चित्त** ग्रन्थ मूलतः शौरसेनी प्राकृत में है और उसमें मूलतः आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय (आलोचना और प्रतिक्रमण), विवेक, व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग), तप, छेद, मूल, परिहार एवं पारंचिक, इन दस प्रकार के प्रायश्चित्तों का और उन प्रायश्चित्तों से सम्बन्धित अपराधों का अर्थात् पञ्चमहाव्रत, रात्रिभोजननिषेध, पञ्चसमियाँ, पाँच इन्द्रियों का निरोध, केशलोच, षडावश्यक, आचेल्य (नग्नता), अस्नान, अदन्तधावन, भूमिशयन, स्थितिभोजन, एकसमयभोजन, इन अट्ठाईस मूलगुणों और उनके उत्तरगुणों के उल्लंघन-सम्बन्धी दोषों का विस्तृत विवेचन है।" (जै.ध.या.स./पृ.१४३)।

मुनि के लिए इन २८ मूलगुणों के विधान से ही सिद्ध है कि 'छेदपिण्ड' ग्रन्थ असन्दिग्धरूप से दिगम्बराचार्य की कृति है, क्योंकि यापनीय-परम्परा में आचेलक्य (नग्नता) मुनियों का मूलगुण (आधारभूत या अनिवार्य गुण) नहीं माना गया है, उसके बिना भी इस परम्परा में मुनिपद की प्राप्ति एवं मुक्ति संभव बतलायी गयी है।

यापनीय-परम्परा के उपलब्ध ग्रन्थ तीन ही हैं : स्त्रीनिर्वाणप्रकरण, केवलिभुक्ति-प्रकरण और शाकटायन-व्याकरण। इन तीनों के कर्त्ता पाल्यकीर्ति शाकटायन हैं। इनमें से किसी में भी मुनियों के लिए उपर्युक्त २८ मूलगुणों का विधान नहीं मिलता। अतः वे यापनीयमुनियों के मूलगुण सिद्ध नहीं होते। वस्तुतः जैसा कि 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने बार-बार कहा है, '**यापनीय श्वेताम्बर-आगमों को ही**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रमाण मानते थे,' अतः स्पष्ट है कि श्वेताम्बर-आगमों में मुनियों के लिए जो २७ मूलगुण निर्धारित किये गये हैं,[१] वे ही यापनीय-मुनियों के लिए भी प्रमाणभूत थे। इन २७ मूलगुणों में पाँच समितियाँ, छह आवश्यक, आचेलक्य, केशलोच, अस्नान, अदन्तधावन, क्षितिशयन, स्थितिभोजन और एकभक्त ये अठारह मूलगुण समाविष्ट नहीं हैं, जो 'छेदपिण्ड' ग्रन्थ में वर्णित हैं। इससे सिद्ध है कि यापनीयों के लिए अमान्य और दिगम्बरमान्य अट्ठाईस मूलगुणों का प्रतिपादन करनेवाला 'छेदपिण्ड' यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है।

२

अचेलव्रत भंग करने पर प्रायश्चित का विधान

छेदपिण्ड में अचेलव्रत को भंग करने पर निम्नलिखित प्रायश्चित्त दिये जाने का नियम बतलाया गया है—

उवसग्गदो अणारोगदो कारणवसेण दप्पादो।
गिहि-अण्णतित्थ-लिंगग्गहणेणाचेलवदभंगे॥ १२४॥

जादे पायच्छित्तं खमणं छट्ठं कमेण संठाणं।
मूलं पि य जणणादे दायव्वं एगवारम्मि॥ १२५॥

संस्कृत छाया

उपसर्गतः अनारोगतः कारणवशेन दर्पतः।
गृह्यन्यतीर्थलिङ्गग्रहणेन अचेलव्रतभङ्गे॥ १२४॥

जाते प्रायश्चित्तं क्षमणं षष्ठं क्रमेण संस्थानम्।
मूलमपि च जनज्ञाते दातव्यं एकवारे॥ १२५॥

अनुवाद—"जो मुनि किसी के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर अथवा किसी रोग से ग्रस्त हो जाने पर अथवा दर्प के कारण गृहस्थ का अथवा अन्यतीर्थिक (अन्यधर्मावलम्बी) का लिंग (वेश) ग्रहणकर अचेलव्रत का भंग करता है, उसे क्रमशः **खमण** (उपवास)[२] **षष्ठ** (छह भुक्तियों का त्याग-मूलाचार/गा.८१२) तथा मूल[३] नामक प्रायश्चित्त दिया जाना चाहिए।"

---

१. देखिये, प्रस्तुत ग्रन्थ का 'मूलाचार' अध्याय।
२. क— "खमणे वा--- क्षपणे वानशने।" तात्पर्यवृत्ति/प्रवचनसार/३/१५।
ख— "खमण (क्षपण, क्षमण) = उपवास।" पाइअ-सद्द-महण्णवो।
३. आलोयण पडिकमणो उभय विवेगो तहा विउस्सग्गो।
तव परियायच्छेदो मूलं परिहार सद्दहणा॥ १७४॥
एवं दसविध समए पायच्छित्तं रिसीगणे भणियं।
तं केरिसेसु दोसेसु जायदे इदि पयासेमो॥ १७५॥ छेदपिण्ड।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

चतुर्विंश अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ऐसे ही प्रायश्चित्त का विधान **छेदपिण्ड** की निम्नलिखित गाथाओं में भी किया गया है—

एगवराडय-कागिणि -पणचेलाइं पमाददोसेण।
अप्पं परिग्गहं जो गेण्हदि णिग्गंथवदधारी॥ ६१॥

आलोयणा य काउस्सग्गो खमणं च णियमसंजुत्तं।
सपडिक्कमणुववासो कमसो छेदो इमो तस्स॥ ६२॥

अनुवाद—"जो निर्ग्रन्थव्रतधारी प्रमादवश एक बड़ी कौड़ी, छोटी कौड़ी या पाँच प्रकार के वस्त्रों (अंडज=कोशज, बोंडज=कर्पासज, वक्कज=वल्कज, रोमज तथा चम्मज=चर्मज) में से किसी भी वस्त्र का अल्पपरिग्रह भी ग्रहण करता है, वह आलोचना, कायोत्सर्ग, नियमयुक्त उपवास तथा सप्रतिक्रमण उपवास का पात्र है।"

इस प्रकार 'छेदपिण्ड' में किसी रोग के होने पर भी मुनि का वस्त्रग्रहण आचेलक्य-मूलगुण या अपरिग्रहमहाव्रत के भंग का कारण होने से प्रायश्चित्त के योग्य माना गया है, जब कि यापनीयसम्प्रदाय में लज्जा या शीतादि के सहन में असमर्थ होने पर भी वस्त्रग्रहण की छूट है। इससे सिद्ध है कि 'छेदपिण्ड' दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है।

यापनीयपक्ष-समर्थक हेतुओं का निरसन

डॉ० सागरमल जी ने छेदपिण्ड को यापनीयग्रन्थ मानने के पक्ष में जो हेतु विन्यस्त किये हैं, उनका निरसन नीचे किया जा रहा है। 'हेतु' **यापनीयपक्ष** शीर्षक के नीचे और 'निसरन' **दिगम्बरपक्ष** शीर्षक के नीचे प्रस्तुत है।

१

दिगम्बरग्रन्थों में भी 'श्रमणी' का उल्लेख

यापनीयपक्ष

'छेदपिण्ड' में **श्रमणी** का स्पष्ट उल्लेख है और इसमें श्रमणियों के लिए वे ही प्रायश्चित्त हैं, जो श्रमणों के लिए हैं। श्रमणियों के लिए मात्र पर्यायछेद, मूल, परिहार, दिनप्रतिमा और त्रिकालयोग नामक प्रायश्चित्तों का निषेध है। श्रमणों और श्रमणियों की इस समानता का प्रतिपादन छेदपिण्ड के यापनीयग्रन्थ होने का सूचक है। (जै.ध.या.स./पृ.१४४)।

दिगम्बरपक्ष

यह हेतु समीचीन नहीं है, यह साधारणानैकान्तिक हेत्वाभास है, क्योंकि 'श्रमणी', 'संयती' और 'विरती' शब्दों का प्रयोग दिगम्बरग्रन्थों में भी किया गया है।[४] तथा श्रमणियों के लिए जो पर्यायछेद, मूल, परिहार, दिनप्रतिमा और त्रिकालयोग नामक प्रायश्चित्तों का निषेध है, उससे सिद्ध होता है कि 'छेदपिण्ड' ग्रन्थ में श्रमणियों को साधना की दृष्टि से श्रमणों के तुल्य स्वीकार नहीं किया गया है। यह उनके तद्भवमुक्ति-योग्य न होने की घोषणा है।

२
काणूरगण दिगम्बरसंघ का गण

यापनीयपक्ष

कन्नड़ कवि **जन्न** (१२१९ ई०) के अनन्तनाथपुराण के '**वंद्यर जटासिंह णंद्याचार्यादीन्द्रणंद्याचार्यादि मुनिकाणूर्ग णंद्यपृथिवियोलगेल्लं**' (१/७) इस श्लोक में जटासिंहनन्दी (वरांगचरितकर्त्ता) और इन्द्रनन्दी को काणूरगण का बतलाया गया है। 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने काणूरगण को यापनीयसंघ का गण मानकर उक्त दोनों ग्रन्थकारों को यापनीयसंघ से सम्बद्ध माना है और काणूरगण के उक्त इन्द्रनन्दी को 'छेदपिण्ड' का कर्त्ता बतलाकर उसे यापनीयग्रन्थ प्ररूपित किया है। (जै.ध.या.स./पृ. १४५)।

दिगम्बरपक्ष

प्रस्तुत ग्रन्थ के 'वरांगचरित' अध्याय में सिद्ध किया जा चुका है कि 'वरांगचरित' के कर्त्ता जटासिंहनन्दी दिगम्बर थे, इसलिए उनका काणूरगण भी दिगम्बरसंघ से सम्बद्ध था। इसके अतिरिक्त **यापनीयसंघ का इतिहास** नामक सप्तम अध्याय (प्र.३/शी.४) में भी सप्रमाण दर्शाया जा चुका है कि काणूरगण दिगम्बरसंघ के ही अन्तर्गत था, न कि यापनीयसंघ के। यापनीयसंघ के अन्तर्गत 'कण्डूरगण' था। यापनीयपक्षधर ग्रन्थकारों ने भ्रान्तिवश दोनों को एक मान लिया है। यतः काणूरगण दिगम्बरसंघ का गण था, अतः उक्त गण से सम्बद्ध इन्द्रनन्दी भी दिगम्बर थे। इसलिए उनके द्वारा रचित 'छेदपिण्ड' दिगम्बरग्रन्थ ही है, यह स्वतःसिद्ध होता है।

---

४. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ का 'मूलाचार' नामक पञ्चदश अध्याय।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दिगम्बरपक्ष

यह हेतु समीचीन नहीं है, यह साधारणानैकान्तिक हेत्वाभास है, क्योंकि 'श्रमणी', 'संयती' और 'विरती' शब्दों का प्रयोग दिगम्बरग्रन्थों में भी किया गया है।[४] तथा श्रमणियों के लिए जो पर्यायछेद, मूल, परिहार, दिनप्रतिमा और त्रिकालयोग नामक प्रायश्चित्तों का निषेध है, उससे सिद्ध होता है कि 'छेदपिण्ड' ग्रन्थ में श्रमणियों को साधना की दृष्टि से श्रमणों के तुल्य स्वीकार नहीं किया गया है। यह उनके तद्भवमुक्ति-योग्य न होने की घोषणा है।

२

काणूरगण दिगम्बरसंघ का गण

यापनीयपक्ष

कन्नड़ कवि **जन्न** (१२१९ ई०) के अनन्तनाथपुराण के '**वंद्यर जटासिंह णंद्याचार्यादीन्द्रणंद्याचार्यादि मुनिकाणूर्ग णंद्यपृथिवियोलगेल्लं**' (१/७) इस श्लोक में जटासिंहनन्दी (वरांगचरितकर्त्ता) और इन्द्रनन्दी को काणूरगण का बतलाया गया है। 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने काणूरगण को यापनीयसंघ का गण मानकर उक्त दोनों ग्रन्थकारों को यापनीयसंघ से सम्बद्ध माना है और काणूरगण के उक्त इन्द्रनन्दी को 'छेदपिण्ड' का कर्त्ता बतलाकर उसे यापनीयग्रन्थ प्ररूपित किया है। (जै.ध.या.स./पृ. १४५)।

दिगम्बरपक्ष

प्रस्तुत ग्रन्थ के 'वरांगचरित' अध्याय में सिद्ध किया जा चुका है कि 'वरांगचरित' के कर्त्ता जटासिंहनन्दी दिगम्बर थे, इसलिए उनका काणूरगण भी दिगम्बरसंघ से सम्बद्ध था। इसके अतिरिक्त **यापनीयसंघ का इतिहास** नामक सप्तम अध्याय (प्र.३/शी.४) में भी सप्रमाण दर्शाया जा चुका है कि काणूरगण दिगम्बरसंघ के ही अन्तर्गत था, न कि यापनीयसंघ के। यापनीयसंघ के अन्तर्गत 'कण्डूरगण' था। यापनीयपक्षधर ग्रन्थकारों ने भ्रान्तिवश दोनों को एक मान लिया है। यतः काणूरगण दिगम्बरसंघ का गण था, अतः उक्त गण से सम्बद्ध इन्द्रनन्दी भी दिगम्बर थे। इसलिए उनके द्वारा रचित 'छेदपिण्ड' दिगम्बरग्रन्थ ही है, यह स्वतःसिद्ध होता है।

---

४. देखिए, प्रस्तुत ग्रन्थ का 'मूलाचार' नामक पञ्चदश अध्याय।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

रविषेण दिगम्बराचार्य हैं

यापनीयपक्ष

रविषेण ने 'पद्मचरित' में अपनी गुरुपरम्परा में इन्द्र, दिवाकरयति, अर्हन्मुनि और लक्ष्मणसेन के नामों का उल्लेख किया है। रविषेण यापनीय थे, इसलिए उनके गुरु 'छेदपिण्डकर्त्ता' इन्द्र का भी यापनीय होना स्वाभाविक है। (जै. ध. या. स./पृ. १४५)।

दिगम्बरपक्ष

रविषेण दिगम्बराचार्य थे, यह १९वें अध्याय में प्रमाणित किया जा चुका है। अतः यदि उनके गुरुओं के गुरु इन्द्र 'छेदपिण्ड' के कर्त्ता थे, तो उनका भी दिगम्बर होना सुनिश्चित है। इस प्रकार भी 'छेदपिण्ड' दिगम्बराचार्यकृत ही सिद्ध होता है।

४

छेदपिण्ड के कर्त्ता इन्द्र यापनीय नहीं

यापनीयपक्ष

यापनीयसंघी पाल्यकीर्ति शाकटायन ने अपने सूत्रपाठ में इन्द्र का उल्लेख किया है। पाल्यकीर्ति यापनीय थे, अतः उनके गुरु इन्द्र भी यापनीय रहे होंगे। (जै.ध.या.स./पृ. १४५)।

दिगम्बरपक्ष

ये यापनीय हो सकते हैं, किन्तु 'छेदपिण्ड' के कर्त्ता नहीं, क्योंकि उसमें मुनियों के दिगम्बरसम्मत २८ मूलगुणों का वर्णन है, जो यापनीयमत के विरुद्ध हैं।

५

गोम्मटसार के कर्त्ता के गुरु इन्द्रनन्दी दिगम्बर

यापनीयपक्ष

गोम्मटसार के कर्त्ता आचार्य नेमिचन्द्र ने कर्मकाण्ड की गाथा क्र० ७८५ में इन्द्रनन्दी गुरु को नमस्कार किया है। संभवतः ये ही यापनीयसंघी और छेदपिण्ड के कर्त्ता थे। (जै. ध. या. स./पृ. १४८)।

दिगम्बरपक्ष

गोम्मटसार के कर्त्ता आचार्य नेमिचन्द्र ने जिन इन्द्रनन्दी गुरु को प्रणाम किया है, यदि उन्हें 'छेदपिण्ड' का कर्त्ता स्वीकार किया जाय, तो वे यापनीय किसी भी

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हालत में सिद्ध नहीं होते, क्योंकि दिगम्बर आचार्य नेमिचन्द्र का एक जैनाभासी (मिथ्यादृष्टि) को नमस्कार करना कभी भी संभव नहीं है।

वस्तुतः कोई भी इन्द्रनन्दी छेदपिण्ड के कर्त्ता हों, पर वे यापनीय नहीं हो सकते, क्योंकि छेदपिण्ड में मुनि के जिन २८ मूलगुणों का वर्णन है, वे यापनीय और श्वेताम्बर मतों के विरुद्ध हैं, केवल दिगम्बरमतानुरूप हैं।

६

श्वेतपट श्रमणों का पाषण्डरूप में उल्लेख

'छेदपिण्ड' की २८वीं गाथा में भागवतों, कापालिकों आदि के साथ श्वेतपट-श्रमणों का भी पाषण्ड (मिथ्याधर्म-प्ररूपक) के रूप में उल्लेख है।[५] यह बात 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के कर्त्ता ने भी स्वीकार की है। (पृ.१५३)। अतः उसका यापनीयग्रन्थ होना असंभव है, क्योंकि यापनीय श्वेताम्बर-आगमों के अनुयायी थे और जिस परम्परा के आगमों को प्रमाण मानते थे, उसी परम्परा के श्रमणों को वे पाषण्ड के रूप में वर्णित नहीं कर सकते थे।

७

'कल्पव्यवहार' आदि ग्रन्थ दिगम्बरपरम्परा में भी

यापनीयपक्ष

छेदपिण्ड में अनेक स्थलों पर **कल्पव्यवहार** का निर्देश है। इस श्वेताम्बरीयग्रन्थ के अनुसरण से सिद्ध है कि छेदपिण्ड यापनीयकृति है। (जै.ध.या.स./१५२)

दिगम्बरपक्ष

'छेदपिण्ड' में जिस 'कल्पव्यवहार' ग्रन्थ का उल्लेख है, वह श्वेताम्बरीय ग्रन्थ नहीं है, अपितु तन्नामक दिगम्बरग्रन्थ ही है, क्योंकि जिन श्वेतपटश्रमणों को 'छेदपिण्ड' ग्रन्थ में **पाषण्ड** संज्ञा दी गई हो, उन्हीं श्रमणों को मान्य ग्रन्थों से किसी भी सामग्री का ग्रहण किया जाना संभव नहीं है। दिगम्बर-परम्परा अंगप्रविष्टश्रुत का विच्छेद मानती है, अंगबाह्य का नहीं। कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, प्रतिक्रमण आदि ग्रन्थ अंगबाह्यश्रुत के अन्तर्गत हैं, जिनका उल्लेख दिगम्बरग्रन्थों में भी है।[६] अतः उनका

---

५. सेवडय-भगववंदग-कावालिय-भोयपमुह-पासंडा।
जदि संजदस्स कस्स वि उवरि विवादादिहेदूहिं॥ २८॥ छेदपिण्ड।
(प्रायश्चित्तसंग्रह/ माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला/आषाढ़, वि.सं.१९७८ में संगृहीत)।

६. देखिये, धवला/ ष.ख./ पु.१/१,१,२/पृ.९७ एवं तत्त्वार्थवृत्ति १/२०/ पृ. ६७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अस्तित्व दिगम्बर-परम्परा में रहा है। इनमें से कुछ वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं, यह अन्य बात है।

मूलाचार, भगवती-आराधना और उसकी विजयोदयाटीका में भी कल्पव्यवहार, जीतकल्प आदि ग्रन्थों के नाम मिलते हैं, तथापि वे (मूलाचार, भगवती-आराधना आदि) न तो यापनीयग्रन्थ हैं, न श्वेताम्बरीय, अपितु शत-प्रतिशत दिगम्बरग्रन्थ हैं, यह उन ग्रन्थों के अध्यायों में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है। इसी प्रकार 'छेदपिण्ड' भी उक्त ग्रन्थों के उल्लेख से यापनीयग्रन्थ सिद्ध नहीं होता, अपितु मुनियों के यापनीय-परम्परा-विरुद्ध एवं दिगम्बर-परम्परासम्मत २८ मूलगुणों का प्रतिपादन करने से दिगम्बरग्रन्थ ही सिद्ध होता है।

८

छेदपिण्ड 'मूलाचार' आदि दिगम्बरग्रन्थों की परम्परा का

यापनीयपक्ष

''छेदपिण्ड-प्रायश्चित्त' (छेदपिण्ड) की गाथा १७४ और 'मूलाचार' (आर्यिका ज्ञानमती जी द्वारा सम्पादित) की गाथा ३६२ में विचारगत ही नहीं, शब्दगत समानता भी है। ये दोनों ग्रन्थ श्वेताम्बर-परम्परा के पाराञ्चिक प्रायश्चित्त के स्थान पर 'श्रद्धान' का उल्लेख करते हैं। इस प्रकार छेदपिण्ड और मूलाचार दोनों की परम्परा समान प्रतीत होती है।--- चूँकि मूलाचार यापनीय-परम्परा का ग्रन्थ है, यह सिद्ध ही है, अतः इसके आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि यह छेदपिण्ड-प्रायश्चित्त ग्रन्थ भी यापनीय-परम्परा का रहा होगा।'' (जै.ध.या.स./पृ.१५१)।---इसमें मूलगुणों और भोजन के अन्तरायों के जो उल्लेख हैं, वे इसे मूलाचार और भगवती-आराधना की परम्परा का ही ग्रन्थ सिद्ध करते हैं। अतः इसका यापनीय-कृति होना सुनिश्चित है। (जै.ध.या.स./पृ.१५३)।

दिगम्बरपक्ष

इस कथन में ग्रन्थलेखक ने 'छेदपिण्ड' या 'छेदपिण्ड-प्रायश्चित्त' को मूलाचार और भगवती-आराधना की परम्परा का ग्रन्थ सिद्ध किया है। इस तरह उनकी ही लेखनी सिद्ध कर देती है कि 'छेदपिण्ड' दिगम्बर-परम्परा का ही ग्रन्थ है, क्योंकि मूलाचार और भगवती-आराधना यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बराचार्यों की कृतियाँ है, यह पूर्व में सप्रमाण सिद्ध किया जा चुका है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

९

'देशयति' शब्द देशव्रती या श्रावक का ही पर्यायवाची

यापनीयपक्ष

उक्त ग्रन्थलेखक का कथन है कि ''छेदपिण्ड' ग्रन्थ की गाथा ३०३ में स्पष्टरूप से कहा गया है कि 'देशयति को संयत के प्रायश्चित्त का आधा देना चाहिए।' इससे यह प्रतीत होता है कि यह परम्परा एलक, क्षुल्लक आदि को उत्कृष्ट श्रावक न मानकर श्रमणवर्ग के अन्तर्गत ही रखती थी। जबकि मूलसंघीय परम्परा परिग्रह रखनेवाले व्यक्ति को श्रावक की अवस्था से ऊपर नहीं मानती है। यापनीयपरम्परा में आचारांग का सन्दर्भ देकर श्रमणों के दो विभाग किये गये हैं- सर्वश्रमण और नोसर्वश्रमण। नोसर्वश्रमण को ही शब्दभेद से इस ग्रन्थ में देशयति माना गया है। दिगम्बरपरम्परा में प्रचलित क्षुल्लक शब्द भी इसी का वाचक है। क्षुल्लक या देशयति को श्रावक कहना मात्र आग्रहबुद्धि का परिचायक है।'' (जै. ध. या. स./पृ. १५०-१५१)।

दिगम्बरपक्ष

१. 'छेदपिण्ड' की ३०३ क्रमांकवाली गाथा में 'देशयति' शब्द श्रावक के ही अर्थ में प्रयुक्त है, श्रमण के अर्थ में नहीं, यह उक्त गाथा और उसकी उत्तरवर्ती गाथाओं के विवरण से स्पष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण गाथा इस प्रकार है—

दोण्हं तिण्हं छण्हं मुवरिमुक्कस्समज्झिमिदराणं।
देसजदीणं छेदो विरदाणं अद्धद्धपरिमाणं॥ ३०३॥

संस्कृत छाया

द्वयोः त्रयाणां षण्णाम् उपरि उत्कृष्टयोः मध्यमानामितरेषाम्।
देशयतीनां छेदो विरतानाम् अर्धार्धपरिमाणः॥ ३०३॥

अन्वयः—द्वयोः उत्कृष्टयोः त्रयाणाम् मध्यमानाम् उपरि (एतदतिरिक्तं) षण्णाम् इतरेषाम् देशयतीनां छेदः विरतानां अर्धार्धपरिमाणः (अर्धार्धक्रमेण दातव्यः)।

अनुवाद—''दो उत्कृष्ट देशयतियों (देशव्रतियों = १०,११ प्रतिमाधारी श्रावकों) को मुनियों की अपेक्षा आधा, तीन मध्यम देशयतियों (देशव्रतियों = ७, ८, ९ प्रतिमाधारी श्रावकों) को उत्कृष्ट देशयतियों का आधा और छह जघन्य देशयतियों (देशव्रतियों=१ से ६ प्रतिमाधारी जघन्य श्रावकों) को मध्यम देशयतियों का आधा प्रायश्चित्त देना चाहिए।

इस प्रकार उक्त गाथा में **देशयति** शब्द का प्रयोग उत्तम, मध्यम और जघन्य तीनों प्रकार के अर्थात् सभी ग्यारह प्रकार के श्रावकों के लिए 'देशव्रती' के पर्यायवाची

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह बात 'छेदपिण्ड' की उत्तरगाथाओं में स्पष्ट कर दी गई है। यथा—

संजद-पायच्छित्तस्सद्धादि-कमेण **देसविरदाणं**।
पायच्छित्तं होदित्ति जदि वि सामण्णदो वुत्तं॥ ३०५॥

तो वि महापातकदोससंभवे छण्हमवि जहण्णाणं।
देसविरदाणमण्णं मलहरणं अत्थि जिणभणिदं॥ ३०६॥

अनुवाद—"संयतों के प्रायश्चित्त का उत्तरोत्तर आधा-आधा प्रायश्चित्त देशविरतों को दिया जाता है, यद्यपि यह सामान्यतः कहा गया है, तथापि महापाप होने पर छहों जघन्य देशविरतों के लिए अन्य प्रायश्चित्त जिनेन्द्रदेव ने बतलाया है।"

यहाँ उत्तम, मध्यम और जघन्य तीनों प्रकार के श्रावकों के लिए 'देशयति' के स्थान में **देशविरत** शब्द का प्रयोग कर स्पष्ट कर दिया गया है कि ३०३ क्रमांकवाली गाथा में 'देशयति' शब्द देशव्रती अर्थात् अणुव्रती के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। 'देशयति' शब्द से ही **अंशतः विरत** अर्थ सूचित होता है, जो अणुव्रती का पर्यायवाची है। श्रमण तो **सकल यति** अर्थात् महाव्रती होता है।

तथा **छेदशास्त्र**, जिसे उक्त यापनीयपक्षधर लेखक ने 'छेदपिण्ड' का ही संक्षिप्त रूप कहा है, उसमें तो देशयति के स्थान में स्पष्टतः **श्रावक** शब्द प्रयुक्त किया गया है—

जं सवणाणं भणियं पायच्छित्तं पि **सावयाणं** पि।
दोण्हं तिण्हं छण्हं अद्धद्धकमेण दायव्वं॥ ७८॥

संस्कृतटीका—ऋषीणां यत्प्रायश्चित्तं तच्छ्रावकाणामपि भवति। परं किन्तु उत्तमश्रावकाणां ऋषेः प्रायश्चित्तस्य अर्द्धम्। तस्यार्धं ब्रह्मचारिणाम् = तदर्धं मध्यमश्रावकस्य प्रायश्चित्तम्। तदर्धं जघन्यश्रावकस्य प्रायश्चित्तम्। (वही, गाथा ७८/पृ.१००, टीकाकार के नाम का उल्लेख नहीं है)।

इस गाथा में दो उत्कृष्ट, तीन मध्यम और छह जघन्य, इन तीनों प्रकार के श्रावकों को 'श्रावक' शब्द से अभिहित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि 'देशयति' शब्द श्रावक का ही वाचक है, श्रमण का नहीं। अतः यह आशय ग्रहण करना कि छेदपिण्ड उस यापनीय-परम्परा का ग्रन्थ है, जो एलक-क्षुल्लक को उत्कृष्ट श्रावक न मानकर श्रमणवर्ग के अन्तर्गत रखती थी, स्वाभीष्टमत का सत्यापलापी आरोपण है। इसके अतिरिक्त—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१. देशयति शब्द को **विरदाणं** (विरत) के प्रतिपक्षी के अर्थ में प्रयुक्तकर तथा उसके लिए विरतों से आधे प्रायश्चित का विधान कर स्पष्ट कर दिया गया है कि 'देशयति' विरतों (श्रमणों) से भिन्न एवं निम्न हैं।

२. यापनीय एवं श्वेताम्बर परम्पराओं में भी देशयति को श्रमण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि 'देशयति' शब्द **देश** (आंशिक या अल्प) यतित्व या विरतत्व का वाचक है, जब कि 'श्रमण' भले ही वह स्थविरकल्पी हो, श्वेताम्बरशास्त्रों में पूर्ण यति अर्थात् सर्वथा विरत माना गया है। 'यति' और 'विरत' शब्द समानार्थी हैं। उनमें 'देश' विशेषण जोड़ देने से वे श्रावक के वाचक बन जाते हैं। इसीलिए 'छेदपिण्ड' की पूर्वोक्त गाथाओं में ये दोनों शब्द समानार्थ में प्रयुक्त किये गये हैं। श्वेताम्बरीय तत्त्वार्थाधिगमभाष्य में भी देशविरत को अणुव्रती और अणुव्रती को अगारी (श्रावक) कहा गया है, यथा—"**हिंसादिभ्य एकदेशविरतिरणुव्रतम्।**" (७/२), '**अणुव्रतधरः श्रावकोऽगारव्रती भवति।**' (७/१५)। अतः श्वेताम्बरीय प्रमाणों से भी 'देशयति' शब्द श्रावक का ही वाचक सिद्ध होता है, श्रमण का नहीं।

३. और दिगम्बर-परम्परा के समान यापनीय एवं श्वेताम्बर परम्पराओं में भी श्रमणों के उत्तम, मध्यम और जघन्य भेद नहीं होते, जिससे उपर्युक्त गाथा में प्रयुक्त उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य शब्दों और उनकी दो, तीन और छह संख्या से यह माना जाय कि उत्कृष्ट श्रमण दो प्रकार के होते हैं, मध्यम श्रमण तीन प्रकार के, और जघन्य श्रमण छह प्रकार के होते हैं। श्रमणों के ऐसे ऊँचे-नीचे भेद और उनकी दो, तीन और छह संख्या और इतने अलग-अलग नाम उपर्युक्त तीनों सम्प्रदायों के आगमों में उपलब्ध नहीं हैं। अतः वे श्रमणों के भेद नहीं, अपितु श्रावकों के ही भेद हैं।

४. यदि देशयति को भी श्रमण माना जाय तो उपर्युक्त गाथा से यह अर्थ प्रतिपादित होगा कि "श्रमणों को श्रमणों के प्रायश्चित्त से उत्तरोत्तर आधा-आधा प्रायश्चित्त देना चाहिए" किन्तु यह अर्थ उपपन्न नहीं होगा, क्योंकि श्रमण को तो श्रमण के ही योग्य प्रायश्चित्त दिया जा सकता है। उससे आधा प्रायश्चित्त जिसे दिया जायेगा, वह श्रमण नहीं कहला सकता, अश्रमण ही कहलायेगा।

५. किसी भी यापनीयग्रन्थ में श्रमण को 'देशयति' शब्द से अभिहित नहीं किया गया है। **सर्वश्रमण** और **नोसर्वश्रमण** का उल्लेख भी किसी यापनीयग्रन्थ में मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुआ। यापनीयपक्षधर विद्वान् ने भी किसी यापनीयग्रन्थ से उद्धरण देकर उक्त उल्लेख की पुष्टि नहीं की है। तथापि यदि नोसर्वश्रमण को देशयति का समानार्थी माना जाय, तो वह श्रावक का ही वाचक सिद्ध होगा, क्योंकि 'छेदपिण्ड' में 'देशयति'

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

शब्द श्रावक के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और उपर्युक्त श्वेताम्बरीय प्रमाणों से भी वह श्रावक का ही वाचक सिद्ध होता है।

६. दिगम्बरमत में क्षुल्लक और एलक अणुव्रतधारी श्रावक ही होते हैं, सम्पूर्ण दिगम्बरजैन-साहित्य इसका गवाह है। प्रत्यक्ष प्रमाण के लिए रविषेणकृत 'पद्मपुराण' (१९) एवं 'बृहत्कथाकोश' (२३) नामक पूर्व अध्याय द्रष्टव्य हैं। रविषेण ने पद्मपुराण में क्षुल्लक को अणुव्रतधारी बतलाया है।[७] और बृहत्कथाकोश में उसे श्रावक कहा गया है[८] तथा यह कथा वर्णित है कि मोक्षाभिलाषी दो राजकुमार गुरु के आदेश से परीषह-सहन के अभ्यास हेतु पहले क्षुल्लकदीक्षा ग्रहण करते हैं, पश्चात् क्षुल्लकपद का परित्याग कर मुनिदीक्षा ग्रहण कर लेते हैं।[९] इन वचनों से सिद्ध है कि क्षुल्लक अणुव्रतधारी होने से श्रावक ही होता है। अतः जब इन ग्रन्थों में देशयति और क्षुल्लक को स्पष्ट शब्दों में श्रावक ही कहा गया है, तब उसे श्रावक न मानकर श्रमण कहना डॉक्टर सा० के ही शब्दों में आग्रहबुद्धि का परिचायक है।

७. किसी भी यापनीयग्रन्थ में श्रमण से भिन्न एलक-क्षुल्लक नामक व्रतियों का उल्लेख नहीं है। तथा उक्त परम्परा में उनका अस्तित्व हो भी नहीं सकता, क्योंकि उसमें सवस्त्र व्रतियों को भी 'मुनि' संज्ञा दी गई है। श्वेताम्बर और यापनीय परम्परा में **क्षुल्लक** (**खुड्डग**) शब्द का प्रयोग नवदीक्षित युवा मुनि के लिए किया गया है,[१०] उत्कृष्ट श्रावक के लिए नहीं। अतः जिस परम्परा में क्षुल्लक-एलक नामक व्रतियों का भेद ही मान्य नहीं था, उसके बारे में यह कहना कि वह क्षुल्लक-एलक को उत्कृष्ट श्रावक न मानकर श्रमणवर्ग के अन्तर्गत रखती थी, नितान्त असंगत और निराधार कथन है। चूँकि क्षुल्लक-एलक यापनीय-परम्परा के पारिभाषिक शब्द नहीं है, इसलिए इनका वाचक 'देशयति' शब्द भी यापनीय-परम्परा का पारिभाषिक शब्द नहीं है। फलस्वरूप छेदपिण्ड में उसका प्रयोग होने से उसे यापनीयग्रन्थ कहना अप्रामाणिक कथन है।

इस प्रकार उपर्युक्त दस प्रमाणों से सिद्ध है कि 'छेदपिण्ड' दिगम्बर-परम्परा का ही ग्रन्थ है, यापनीय-परम्परा का नहीं।

---

७. देखिये, अध्याय १९/प्रकरण १/शीर्षक २ 'वस्त्रमात्रपरिग्रहधारी की क्षुल्लक संज्ञा।'

८. देखिये, अध्याय २३/शीर्षक ३ 'सवस्त्रमुक्तिनिषेध' के अन्तर्गत 'सवस्त्रमुक्ति-निषेध के अन्य प्रमाण' अनुच्छेद क्र.७।

९. देखिये, अध्याय २३ /शीर्षक २ 'गृहस्थमुक्तिनिषेध'/अनुच्छेद क्र.३।

१०. देखिये, अध्याय ११/प्रकरण/४/शीर्षक १०.३ 'श्वेताम्बरग्रन्थों में एक ही भव में उभय-वेदपरिवर्तन भी मान्य।'

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

छेदशास्त्र

इस ग्रन्थ के विषय में 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने लिखा है—"जहाँ तक ग्रन्थ की विषयवस्तु का प्रश्न है, वह मुख्यतः 'छेदपिण्ड' पर ही आधारित प्रतीत होती है। इसमें भी २८ मूलगुणों के भंग (उल्लंघन) को आधार बनाकर प्रायश्चित्तों का विधान किया गया है। प्रायश्चित्तों का स्वरूप और उनके नाम वही हैं, जो हमें छेदपिण्ड में मिलते हैं। इसकी अनेक गाथाएँ भी छेदपिण्ड में मिलती हैं। यदि इसे छेदपिण्ड का ही एक संक्षिप्त रूप कहा जाय, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका के प्रायश्चित्तों का संक्षिप्त विवेचन उपलब्ध है। इस ग्रन्थ की परम्परा का निश्चय करना कठिन है, क्योंकि इसमें ऐसा कोई भी स्पष्ट संकेत उपलब्ध नहीं है, जिससे इसे यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ कहा जा सके। किन्तु यदि छेदपिण्ड यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है और उसी के आधार पर इस छेदशास्त्र की रचना हुई है, तो यह कहा जा सकता है कि यह भी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ रहा होगा।" (जै. ध. या. स./पृ. १५३-१५४)।

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि डॉक्टर सा० ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि 'छेदशास्त्र' में ऐसा कोई भी स्पष्ट संकेत नहीं है, जिससे इसे यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ कहा जा सके। फिर भी उन्होंने इसे मात्र इस कारण यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ मान लिया कि इसकी रचना छेदपिण्ड के आधार पर हुई है और 'छेदपिण्ड' उनके अनुसार यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है। किन्तु यह ऊपर सिद्ध हो चुका है कि 'छेदपिण्ड' यापनीयपरम्परा का नहीं, अपितु दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ है, अतः उस पर आधारित होने से छेदशास्त्र भी दिगम्बरपरम्परा का है, यह स्वतः सिद्ध है। इसके अतिरिक्त इसमें मुनियों के वे ही २८ मूलगुण [११] बतलाये गये हैं, जो दिगम्बर ग्रन्थ 'प्रवचनसार,' 'मूलाचार' और 'छेदपिण्ड' में वर्णित हैं तथा 'छेदपिण्ड' के ही समान देशयतियों (देशव्रतियों) को उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य श्रेणियों में विभाजित कर मुनियों के लिए विहित प्रायश्चित्त से उत्तरोत्तर आधे-आधे प्रायश्चित्त का भागी बतलाया गया है। इसका वर्णन करनेवाली गाथा 'छेदपिण्ड' के प्रकरण में उद्धृत की जा चुकी हैं। सार यह कि 'छेदशास्त्र' में मुनियों के लिए २८ मूलगुणों का विधान होना इस बात को स्पष्ट प्रमाण है कि वह दिगम्बरग्रन्थ है।

'छेदशास्त्र' में आचेलक्य मूलगुण को भंग करने पर निम्नलिखित प्रायश्चित्तों का विधान किया गया है—

---

११. छेदशास्त्र / गाथा ८-५४ (पृ.७७-९३), (प्रायश्चित्तसंग्रहः / माणिकचन्द्र दि. जैन ग्रन्थमाला/ आषाढ़, विक्रम सं. १९७८ में संगृहीत)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उवसग्ग-वाहिकारण-**दप्पेणाचेलभंगकरणम्हि**।
उववासो छट्ठमासिय कमेण मूलं तदो इसइ॥ ५१॥

अनुवाद—"जो मुनि उपसर्ग (किसी के द्वारा कष्ट दिये जाने) के भय से वस्त्रधारण कर अचेलव्रत को भंग करता है, उसे उपवास का प्रायश्चित्त दिया जाना चाहिए। जो व्याधि के कारण ऐसा करता है वह षष्ठ (लगातार दो दिनों तक) उपवास का पात्र है तथा जो दर्प के कारण (कामविकार को छिपाने के लिए) अचेलव्रत का उल्लंघन करता है, वह 'मूल' नामक प्रायश्चित्त का अधिकारी है।"

यह प्रायश्चित्त-विधान यापनीयमत के सर्वथा विपरीत है। उसमें व्याधि तो क्या, लज्जा और शीतादिपरीषह सहन न होने पर भी साधु के लिए वस्त्रधारण की अनुमति दी गई है, जब कि प्रस्तुत 'छेदशास्त्र' में व्याधि की दशा में भी वस्त्रधारण करने को प्रायश्चित्त का हेतु बतलाया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह ग्रन्थ किसी भी हालत में यापनीयपरम्परा का नहीं है, अपितु अचेलव्रत के निरतिचारपालन का आग्रह करनेवाली दिगम्बर-परम्परा का ग्रन्थ है।

प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

दिगम्बरपरम्परा में एक **प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी** नामक ग्रन्थ है, जिसमें **प्रतिक्रमण बृहत्प्रतिक्रमण** और **आलोचना** नामक तीन ग्रन्थों का संग्रह है। इसके कर्त्ता गौतमस्वामी बतलाये गये हैं। तथा संस्कृत-टीकाकार प्रभाचन्द्र-पण्डित नाम के भट्टारक हैं[१२] एवं प्रकाशक हैं नांदणी, तेरदळ एवं बेलगाँवमठ के भट्टारक श्री जिनसेन। इसका सम्पादन पं० मोतीचंद गौतमचंद कोठारी (फलटण) ने किया है। प्रकाशन वर्ष है वीरसंवत् २४७३ (ई० सन् १९४६)। पूर्वोक्त यापनीयपक्षधर ग्रन्थलेखक ने इसे भी यापनीयकृति बतलाया है। (जै.ध.या.स./पृ.१६०)।

यदि ग्रन्थकर्त्ता पर ध्यान दिया जाय, तो न तो यह श्वेताम्बरग्रन्थ है, न यापनीय, न ही दिगम्बरीय, क्योंकि गौतमस्वामी (भगवान् महावीर के प्रथम गणधर) न तो यापनीय थे, न यापनीयों ने अपने किसी ग्रन्थ को गौतमस्वामी द्वारा रचित बतलाया है। श्वेताम्बर-परम्परा अपने सभी आगमों को सुधर्मा स्वामी द्वारा रचित मानती है और दिगम्बर-परम्परा में किसी भी लिपिबद्ध ग्रन्थ को गणधर द्वारा रचित नहीं कहा गया है। तथापि **प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी** में कुछ ऐसे प्रमाण हैं जिनसे यह केवल दिगम्बर-ग्रन्थ ही सिद्ध होता है। फिर भी डॉ० सागरमल जी इस ग्रन्थ को **आवश्यक** (**प्रतिक्रमणसूत्र**) शीर्षक

---

१२. "पेटलापट्के श्रीचन्द्रप्रभदेवपादानामग्रे श्री गौतमस्वामिकृत-प्रतिक्रमणत्रयस्य टीकात्रयं श्रीप्रभाचन्द्रपण्डितेन कृतमिति।" प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी/ पृ. १९५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

से निर्दिष्ट करते हुए 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ (पृ.१६०-१६५) में लिखते हैं कि वह उन्हें निम्नलिखित कारणों से यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ प्रतीत होता है—

१. इसकी विषयवस्तु का लगभग ८० प्रतिशत भाग वही है, जो श्वेताम्बरपरम्परा के आवश्यकसूत्र में है।

२. ई० सन् ९८० के चालुक्यवंश के सौदत्ति-अभिलेख में यापनीयसंघ के कण्डूर्-गण के प्रभाचन्द्र का उल्लेख है। (जै.शि.सं./मा.च./भा.२/ले.क्र.१६०)। इस ग्रन्थ के टीकाकार संभवतः वही प्रभाचन्द्र हैं। टीकाकार का यापनीय होना सिद्ध करता है कि यह ग्रन्थ यापनीयपरम्परा का है।

३. इसमें रात्रिभोजनविरमण सर्वत्र छठे व्रत या अणुव्रत के रूप में उल्लिखित है। यह मान्यता श्वेताम्बरों में और भगवती-आराधना आदि यापनीयग्रन्थों में मिलती है।

४. इसमें '**एऊणविसाए णाहाज्झयणेसु**' (एकोनविंशतिनाथाध्ययनेषु) कहकर दो गाथाओं में ज्ञातसूत्र के १९ अध्ययनों का विवरण दिया गया है। (प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी/पृ.५१)। ये दोनों गाथाएँ एवं इनमें उल्लिखित ज्ञाता के उन्नीस अध्ययन आज भी श्वेताम्बरपरम्परा में मान्य 'ज्ञाताधर्मकथा' में मिलते हैं। श्वेताम्बर-आगमों की विषयवस्तु का ग्रहण यापनीयग्रन्थ में ही हो सकता है। अतः सिद्ध है कि प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ है।

५. इस प्रतिक्रमणसूत्र (पृ.५६) में '**तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु**' (सूत्रकृतं द्वितीय-मङ्गं, तस्याध्ययनानि त्रयोविंशतिः) कहकर सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययनों का उल्लेख तीन गाथाओं में हुआ है। इससे भी प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी का यापनीयग्रन्थ होना सिद्ध होता है।

६. इसमें दशवैकालिकसूत्र के प्रथम अध्याय की प्रथम गाथा उल्लिखित है। यह श्वेताम्बर-यापनीय दोनों परम्पराओं में मान्य रहा है।

आश्चर्य है कि डॉक्टर सा० को इन कारणों से प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ प्रतीत होती है। वास्तविकता यह है कि इनमें से एक भी हेतु प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि उसमें ऐसे सिद्धान्तों को मान्यता दी गयी है, जो यापनीयमत के मौलिक सिद्धान्तों-आपवादिक सचेल मुनिलिंग अर्थात् सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, और परशासनमुक्ति के विरुद्ध हैं। यथा—

१. ग्रन्थ में मुनियों के द्वारा अचेलत्व, केशलुंच, अस्नान, क्षितिशयन, अदन्तधावन, स्थितिभोजन (खड़े होकर आहार करना), पाणितलभोजन आदि मूलगुणों के ग्रहण किये

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जाने का वर्णन है (पृ.११५)। इनमें से अचेलत्व को यापनीय-परम्परा में मुनियों का मूलगुण नहीं माना गया है, क्योंकि उसमें वस्त्रधारी को भी मुनि कहा गया है। अतः यापनीयपरम्परा में अचेलत्व मूलगुण न होकर वैकल्पिक गुण है। तथा उपलब्ध यापनीयग्रन्थों में मुनि को पाणितलभोजी तो कहा गया है, किन्तु खड़े होकर भोजन करनेवाला, क्षितिपर शयन करनेवाला तथा स्नान और दन्तधावन न करनेवाला नहीं कहा गया है। अतः यापनीय-मुनियों में इन मूल-गुणों का होना भी अनिर्णीत है।

२. अपरिग्रह-महाव्रत के स्वरूप का वर्णन करते हुए निम्नलिखित वस्तुओं को श्रमण के अयोग्य बतलाकर उन्हें ग्रहण करने का निषेध किया गया है—

"**पंचमे महव्वदे हिरण्णं, धणं, धण्णं, खेत्तं, वत्थुं, कोसं, बलं, वाहणं, सयणं, जाणं, जुगं, गदुं, रहं, संदणं सिबियं, गवेडयं, अंडजं, तसरिचीवरं, बोंडजं, अविबालग्गकोडिमेत्तं पि असमणपाउग्गं।**" (पृ.१२९-१३०)।

अनुवाद—"पञ्चम महाव्रत में सोना-चाँदी, धन, धान्य, खेत, घर, कोश (भाण्डागार), बल (सेना), वाहन (हस्ति, अश्व आदि), शकट (बैलगाड़ी), यान (पालकी), जुग (डोला)[१३], गदु (गादी-गद्दा)[१४] रथ (उत्तमघोड़ोंवाला रथ), स्यन्दन (सामान्य घोड़ोंवाला रथ),[१५] शिबिका, भेड़ (एडक) के ऊन से बने वस्त्र, रेशमीवस्त्र (अंडज),[१६] तसर (एक विशेष प्रकार के धागे) से बने चीवर (वस्त्र)[१६] और सूतीवस्त्र (बोंडज)[१६] इन चीजों का भेड़ के बाल की नोंक के बराबर भी परिग्रह श्रमण के योग्य नहीं होता। यह अश्रमणों (गृहस्थों) का परिग्रह है। (अतः मुनि को उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए)।"

इस कथन में किसी भी प्रकार के वस्त्र का एक धागा भी ग्रहण करना अपरिग्रह महाव्रत के विरुद्ध बतलाया गया है। किन्तु यापनीयपरम्परा में अपवादरूप से वस्त्र-धारण करने पर भी मुनि को अपरिग्रह-महाव्रतधारी माना गया है। अतः उपर्युक्त कथन यापनीयमत के विरुद्ध है। इससे सिद्ध है कि 'प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी' यापनीयग्रन्थ नहीं है, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है।

३. 'प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी' के अन्तर्गत **बृहत्प्रतिक्रमण** में कहा गया है—"**सग्गथं** (बाह्याभ्यन्तरग्रन्थसहितमात्मनः स्वरूपं व्युत्सृजामि), **णिग्गंथं** (तद्विपरीतं निर्ग्रन्थस्वरूप-

---

१३. "जुगं दोलिकाम्।" प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी/ पृ. १३०।

१४. "गदुं शय्यापालकम् , उपरि छादितः शकटविशेषः।" प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी/पृ. १३०।

१५. "उत्तमाश्वबाह्यो रथः, सामान्याश्वबाह्यो रथः स्यन्दनः।" प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी/पृ. १३०।

१६. पाइअ-सद्द-महण्णवो।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मभ्युत्तिष्ठामि), **सचेलं** (चेलं वस्त्रं तेन सहितं सावरणं स्वरूपं व्युत्सृजामि), **अचेलं** (तद्विपरीतमचेलं निरावरणं स्वरूपमभ्युत्तिष्ठामि)।'' (पृ. ११५)

अनुवाद—''आत्मा के सग्रन्थ (बाह्य और आम्यन्तर परिग्रहसहित) स्वरूप का परित्याग करता हूँ, उसके विपरीत निर्गन्थस्वरूप को ग्रहण करता हूँ। आत्मा के सचेल (वस्त्रसहित) स्वरूप को छोड़ता हूँ, उसके विपरीत अचेल स्वरूप को ग्रहण करता हूँ।''

इस प्रतिक्रमणपाठ में सचेलत्व के परित्याग और अचेलत्व के ग्रहण का संकल्प करना मुनि के लिए आवश्यक बतलाया गया है। इससे स्पष्ट है कि प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी में मुनि के लिए आपवादिक सचेललिंग का विधान नहीं है, अतः यह यापनीयग्रन्थ नहीं है।

४. पूर्व क्रमांक २ पर उद्धृत '**पंचमे महव्वते हिरण्णं**---' इत्यादि अपरिग्रह महाव्रत के लक्षण में सूती, ऊनी, रेशमी आदि सभी प्रकार के वस्त्रों को परिग्रह कहा गया है। निम्नलिखित उद्धरण में भी वस्त्र (कुप्य)[१७] और भाण्ड को ग्रन्थ (परिग्रह) संज्ञा दी गयी है—

''अथवा क्षेत्ररत्नरूप्यसुवर्णधनधान्यदासीदास-**कुप्यभाण्डलक्षण**-बाह्यग्रन्थविषयो दशप्रकारो मोहः। मिथ्यात्ववेदरागादिलक्षणाभ्यन्तरग्रन्थविषयश्चतुर्दशप्रकारः, पञ्चेन्द्रिय-दुष्टमनोविषयः षट्प्रकारो मोहः। एतानि त्रिंशन्मोहनीयस्थानानि परित्याज्यानि। प्रमादात्क-दाचित् तदपरित्यागे प्रतिक्रमणम्।'' (प्रभाचन्द्रकृत टीका / प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी / पृ.६१-६२)।

यहाँ वर्णित क्षेत्र, रत्न, रूप्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य (वस्त्र) और भाण्ड (पात्र) इन दस बाह्य ग्रन्थों तथा मिथ्यात्व, वेद, राग आदि चौदह अभ्यन्तर ग्रन्थों से रहित मुनि को **निर्ग्रन्थ** नाम दिया गया है और कहा गया है कि निर्ग्रन्थलिंग मोक्ष-प्राप्ति का उपाय है—

''**ग्रन्थाद् बाह्यादभ्यन्तराच्च निष्क्रान्तो निर्ग्रन्थः। तन्निर्ग्रन्थतालक्षणं मोक्षमार्गं मोक्षप्राप्त्युपायभूतं लिङ्गम्।**'' (प्रभाचन्द्रकृतटीका / प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी / पृ.६५)।

---

१७. कुप्य = वस्त्र एवं भाण्ड (वर्तन)।
क— ''कुप्यं क्षौम-कार्पासक-कौशेय-चन्दनादि।'' सर्वार्थसिद्धि / ७ / २९।
ख— ''कुप्यं कार्पासादिकम्।'' आचारवृत्ति / मूलाचार / गा.४०८।
ग— ''कुप्यं वस्त्रम्।'' विजयोदया टीका / भगवती-आराधना / गा.१११३।
घ— ''कुप्यप्रमाणातिक्रम = वर्तनों और वस्त्रों के प्रमाण का अतिक्रमण करना।' पं. सुखलाल जी संघवी : तत्त्वार्थसूत्र / विवेचन-सहित / ७ / २४ / पृ. १८८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in